गुरुदत्त

एवं

शुचिव्रत लखनपाल

वेदों में सोम

वेदों में सोम

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

परिषद् के प्रकाशन

दर्शन एवं विज्ञान

श्री गुरुदत्त

न्याय दर्शन (भाष्य)
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य भाग-१
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य भाग-२
मुण्डक—माण्डूक्य उपनिषद्
ईश-केन-कठ उपनिषद्
प्रश्न-ऐत्तरेय उपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
यजुर्वेद में गृहस्थ धर्म
विज्ञान और विज्ञान
वेद प्रवेशिका
वेद और वैदिक काल
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)
सायंस और वेद
सांख्य दर्शन (भाष्य)
सृष्टि रचना

राजनीति

धर्म तथा समाजवाद
प्रजातांत्रिक समाजवाद
बुद्धि बनाम बहुमत
भारत : गांधी नेहरू की छाया में
राष्ट्र, राज्य और संविधान
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान —हिन्दू राष्ट्र
हिन्दुत्व की यात्रा

संस्मरण

भाग्य-चक्र
भाव और भावना (संस्मरण)
मैं हिन्दू हूं

पं० राजाराम शास्त्री

न्याय-प्रवेशिका
नव-दर्शन परिचय

वेदों में सोम

लेखक :-

गुरुदत्त एवं पं० शुचिव्रत लखनपाल

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली - 05

मूल्य 25/-
प्रकाशक **हिन्दी साहित्य सदन**
2 बी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग , नई दिल्ली-110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन/ फैक्स 011 - 23553624
संस्करण 2006
मुद्रक नावलटी प्रिन्टर्स, दिल्ली

शाश्वत संस्कृति परिषद्

शाश्वत का अर्थ है सदा रहने वाला, नित्य। जो नित्य है, वह सबके लिए है। किसी जाति अथवा किसी देश-विशेष से इसका एकाकी सम्बन्ध नहीं हो सकता।

हम यह मानते हैं कि ज्ञान का मूल स्रोत परमात्मा है और परमात्मा का ज्ञान वेद ज्ञान है। यह ज्ञान प्राणीमात्र के लिए है।

जैसे एक वृक्ष, जिसका सम्बन्ध मूल से कट गया हो, कुछ काल तक तो हरा-भरा रह सकता है, परन्तु वह शीघ्र ही सूखने और सड़ने लग जाता है, इसी प्रकार मानव-समाज भी, परमात्मा के मूल ज्ञान से विच्छिन्न हो सूख तथा सड़ रहा है। मानव-समाज मानवता-विहीन हो रहा है।

इस मानव-समाज को पुनः ज्ञान के उस मूल स्रोत वेद से जोड़ने का एक प्रयास ही इस शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य है।

वेद-ज्ञान पर अगाध श्रद्धा रखते हुए, उस ज्ञान को प्राप्त करने तथा सब जनों को कराने का यह एक प्रयास विज्ञ लेखक ने किया है। विषय का इतना सरल प्रस्तुतिकरण कदाचित् ही सम्भव हो। इसके लिए हम श्री गुरुदत्तजी के अत्यन्त आभारी हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्,
नई दिल्ली।

अशोक कौशिक
मन्त्री

प्रकाशकीय

वेद अथाह ज्ञान के भण्डार हैं। परन्तु मध्यकालीन भारतीय विद्वानों और उनका ही अनुकरण करते हुए पाश्चात्य एवं आज के विद्वानों ने मिथ्या धारणाओं के कारण अथवा स्वार्थतश वेदों के अशुद्ध अर्थ किये हैं। परिणामस्वरूप वेदों पर से लोगों की आस्था समाप्त होने लग गई है।

विज्ञ लेखक ने वेदों में 'सोम' शब्द पर, जिसके विषय में भी काफी भ्रम फैला हुआ है, प्रकाश डालने का प्रयास किया है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों को वेदों के विषय में और अधिक जानने की उत्कण्ठा उत्पन्न होगी एवं प्रेरणा भी मिलेगी।

—प्रकाशक
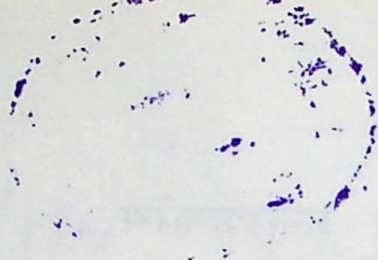
वेदों में सोम

विषय विवेचन

: १ :

मध्यकालीन भारतीय विद्वानों और स्वामी दयानन्द में वेद विषयक मतभेदों में 'सोम' के विषय में मतभेद विशेष महत्वपूर्ण है। स्वामीजी तथा उनके मतानुयायियों के अनुसार 'सोम' शब्द के अशुद्ध अर्थों ने वेद की महिमा को बहुत हानि पहुँचाई है।

वेद के योरुपीय विद्वानों ने मध्यकालीन भारतीय विद्वानों का ही अनुकरण किया है। अतः उनके मिथ्यावाद का दोष भी भारतीय विद्वानों पर ही है।

सोम शब्द की व्युत्पत्ति 'षुञ्' धातु से मानी जाती है। यह धातु 'अभिषव' स्रवित होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

किन्तु इतने मात्र से तो समस्या का समाधान नहीं हो जाता। उसका कारण यह है कि स्रवित होने वाले तो एक नहीं अनेक पदार्थ हैं। मध्यकालीन भारतीय विद्वान् सोम का अभिप्राय एक विशेष प्रकार की लता से ग्रहण करते रहे हैं। वह लता जिसके पत्तों के स्वरस-पान से मादकता, प्रसन्नता और बल का वर्धन होता है। इन विद्वानों के अनुयायी वर्तमान काल में भी विद्यमान हैं। वे इसका अर्थ ऐसा किस प्रकार समझते हैं? उसका उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥

ऋ० ६-४७-१

पदच्छेद— स्वादुः, किल, अयम्, मधुमान्, उत, अयम्, तीव्रः, किल, अयम्, रसवान्, उत, अयम्।

उतः, अन, अस्य, पपिवांसम्, इन्द्रम्, न, कः, च, न, सहत, आ-हवेषु ॥

सायणाचार्य ने इसका अर्थ किया है—

१. (अयं स्वादुः किल) अभिषुतः सोमः आस्वादनीयः भवति।

२. (उत मधुमान् अयं) अपि च माधुर्याश्च सोमो भवति ।

३. (अयं तीव्रः किल) तथा सोमः मदोत्पादने तीक्ष्णः खलु भवति ।

४. (उत अयं रसवान्) अपि च सोमः सारवांश्च भवति ।

अनेन वाक्य चतुष्टयेन सोमस्य माधुर्यातिशयत्वं च प्रतिपादितम् ।

५. (उतो अस्य पपिवांसं इन्द्रं आहवेषु न कश्चन सहते) अपि च सोमस्य (द्वितीयार्थे षष्ठी) इमं सोमं पीतवन्तं संग्रामेषु न कश्चन सहते को अपि अभिभवति । न इति पूरकः ।

सायण के भाष्य का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

१. निचोड़कर निकाला हुआ सोम अति स्वादिष्ट होता है ।

२. और यह भी कि सोम मिठासयुक्त होता है ।

३. और सोम तीक्ष्ण मादकता उत्पन्न करने वाला होता है ।

४. और सोम सार वाला होता है । [सार शब्द के अनेक अर्थ हैं । किसी पदार्थ का सत्व से आरम्भ कर 'आत्मा' तक इसके अर्थ हैं ।]

सायण का अभिप्राय केवल सत्व वाला है ।

५. और सोम को (सायण विभक्ति व्यक्त कर अर्थ करता है) पिये हुए इन्द्र को संग्राम में कोई जीत नहीं सकता ।

सायण ने उपरि उल्लिखित वेदमन्त्र का जो अर्थ किया है, वह दोषपूर्ण है । उसने इसके अर्थ करते हुए बहुत कुछ अपनी ओर से समाविष्ट कर दिया है । अपनी ओर से समाविष्ट करने पर कुछ अन्य का भी समावेश हो सकता है तब अर्थ में अन्तर आ जायेगा ।

हम इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

१. यह (सोम) निश्चय से वस्तुओं को स्वादिष्ट (करता है ।)

१. और यह मिठास (गुण वाला) है । अर्थात् अपने सम्पर्क में आने वाले पदार्थों को मीठा करता है ।

३. निश्चय ही यह तीक्ष्ण गुण वाला है । (अर्थात् अपने सम्पर्क में आये पदार्थों को यह तीक्ष्ण बनाता है ।)

४. और यह रसवान् (श्रेष्ठगुण उत्पन्न करने वाला) है ।

सायण ने इस मन्त्र का अर्थ करते हुए जहाँ 'भवति' शब्द का प्रयोग किया है वहाँ पर हमने 'करोति' शब्द का प्रयोग किया है । इस प्रकार हमारे अर्थों में अन्तर है । सायण का भवति से अभिप्राय है 'होता है ।' करोति का अभिप्राय है 'करता है' । हम समझते हैं कि यहाँ पर 'करोति' का प्रयोग ही उचित है । सोम के सम्पर्क में जो भी पदार्थ आते हैं उन्हें वह गुण वाला कर देता है ।

इसके साथ ही प्रथम पद के अर्थ में सायण ने 'अभिषुतः' शब्द अपनी ओर से जोड़कर पद के अर्थ को विकृत कर दिया है । वेद के मूल मन्त्र में यह शब्द नहीं है ।

आगे अर्थ है—

५. इसको पिये हुए (अपने में आत्मसात् किये हुए) इन्द्र को विरोध में कोई भी सहन नहीं कर सकता।

'आ-हवेषु' का अर्थ सायण ने 'संग्राम में' किया है। किन्तु इसका शाब्दिक अर्थ है विरोध अर्थात् तुलना किये जाने में।

'पपिवांसं' का अर्थ है जिसने पिया हुआ है। पीने का अर्थ जल आदि की भाँति पीना नहीं अपितु इसका अर्थ है आत्मसात् कर लेना। उदाहरण के रूप में जिस प्रकार कोई किसी से ऋण लेकर जब उसको वापस नहीं लौटाता, तो कहा जाता है 'अमुक उसका धन पी गया है।' पी जाना अर्थात् अपने अधिकार में कर लेना।

सायण के अर्थ में आपत्तिजनक बात यह है कि उसने अपनी ओर से कुछ शब्द जोड़कर जो अर्थ किया है उससे वह विकृत हो गया है।

निरुक्ताचार्य ने वेदार्थ के लिए कुछ निश्चित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उन सिद्धान्तों का पालत करते हुए ही किसी को वेद का अर्थ समझने का यत्न करना चाहिये। तभी उसके विशेषणों के सम्बन्ध में कल्पना करनी चाहिये।

हम यहाँ पर संक्षेप में उन सिद्धान्तों का उल्लेख कर देना चाहते हैं। उन सिद्धान्तों के अनुसार ही 'सोम' शब्द के अर्थ ज्ञात किये जाने चाहियें। उसके बाद ही उसके गुणों और कार्यों का वर्णन कर पाना सम्भव होगा।

: २ :

शौनक ने अपने ग्रन्थ 'वृहद्देवता' में लिखा है—

स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मंत्रवित् ॥२२॥
तत् खल्वाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम जायते।
सत्त्वानाँ वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किंचन ॥२३॥

—वृ० दे० १-२२,२३

अर्थात् मन्त्रों के जानने वाले, स्तुतियों के द्वारा देवताओं के नाम से मंत्रों के अर्थ को जानते हैं।

इस कारण कहा जाता है कि अर्थ से ही नाम का ज्ञान होता है। वेद का यथार्थ अर्थ अथवा जो कुछ भी सम्बन्वित बात है वह (देवताओं के) नामों से पता चलती है।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि देवताओं के माध्यम से मन्त्र के विषय का ज्ञान होता है और मन्त्र में वर्णित विषय होने से देवता का ज्ञान होता है।

२. (उत मधुमान् अयं) अपि च माधुर्याश्च सोमो भवति ।
३. (अयं तीव्रः किल) तथा सोमः मदोत्पादने तीक्ष्णः खलु भवति ।
४. (उत अयं रसवान्) अपि च सोमः सारवांश्च भवति ।
अनेन वाक्य चतुष्टयेन सोमस्य माधुर्यातिशयत्वं च प्रतिपादितम् ।
५. (उतो अस्य पपिवांसं इन्द्रं आहवेषु न कश्चन सहते) अपि च सोमस्य (द्वितीयार्थे षष्ठी) इमं सोमं पीतवन्तं संग्रामेषु न कश्चन सहते को अपि अभिभवति । न इति पूरकः ।

सायण के भाष्य का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—
१. निचोड़कर निकाला हुआ सोम अति स्वादिष्ट होता है ।
२. और यह भी कि सोम मिठासयुक्त होता है ।
३. और सोम तीक्ष्ण मादकता उत्पन्न करने वाला होता है ।
४. और सोम सार वाला होता है । [सार शब्द के अनेक अर्थ हैं । किसी पदार्थ का सत्व से आरम्भ कर 'आत्मा' तक इसके अर्थ हैं ।]
सायण का अभिप्राय केवल सत्व वाला है ।
५. और सोम को (सायण विभक्ति व्यक्त कर अर्थ करता है) पिये हुए इन्द्र को संग्राम में कोई जीत नहीं सकता ।

सायण ने उपरि उल्लिखित वेदमन्त्र का जो अर्थ किया है, वह दोषपूर्ण है । उसने इसके अर्थ करते हुए बहुत कुछ अपनी ओर से समाविष्ट कर दिया है । अपनी ओर से समाविष्ट करने पर कुछ अन्य का भी समावेश हो सकता है तब अर्थ में अन्तर आ जायेगा ।

हम इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—
१. यह (सोम) निश्चय से वस्तुओं को स्वादिष्ट (करता है ।)
१. और यह मिठास (गुण वाला) है । अर्थात् अपने सम्पर्क में आने वाले पदार्थों को मीठा करता है ।
३. निश्चय ही यह तीक्ष्ण गुण वाला है । (अर्थात् अपने सम्पर्क में आये पदार्थों को यह तीक्ष्ण बनाता है ।)
४. और यह रसवान् (श्रेष्ठगुण उत्पन्न करने वाला) है ।

सायण ने इस मन्त्र का अर्थ करते हुए जहाँ 'भवति' शब्द का प्रयोग किया है वहाँ पर हमने 'करोति' शब्द का प्रयोग किया है । इस प्रकार हमारे अर्थों में अन्तर है । सायण का भवति से अभिप्राय है 'होता है ।' करोति का अभिप्राय है 'करता है' । हम समझते हैं कि यहाँ पर 'करोति' का प्रयोग ही उचित है । सोम के सम्पर्क में जो भी पदार्थ आते हैं उन्हें वह गुण वाला कर देता है ।

इसके साथ ही प्रथम पद के अर्थ में सायण ने 'अभिषुतः' शब्द अपनी ओर से जोड़कर पद के अर्थ को विकृत कर दिया है । वेद के मूल मन्त्र में यह शब्द नहीं है ।

आगे अर्थ है—

५. इसको पिये हुए (अपने में आत्मसात् किये हुए) इन्द्र को विरोध में कोई भी सहन नहीं कर सकता।

'आ-हवेषु' का अर्थ सायण ने 'संग्राम में' किया है। किन्तु इसका शाब्दिक अर्थ है विरोध अर्थात् तुलना किये जाने में।

'पपिवांसं' का अर्थ है जिसने पिया हुआ है। पीने का अर्थ जल आदि की भाँति पीना नहीं अपितु इसका अर्थ है आत्मसात् कर लेना। उदाहरण के रूप में जिस प्रकार कोई किसी से ऋण लेकर जब उसको वापस नहीं लौटाता, तो कहा जाता है 'अमुक उसका धन पी गया है।' पी जाना अर्थात् अपने अधिकार में कर लेना।

सायण के अर्थ में आपत्तिजनक बात यह है कि उसने अपनी ओर से कुछ शब्द जोड़कर जो अर्थ किया है उससे वह विकृत हो गया है।

निरुक्ताचार्य ने वेदार्थ के लिए कुछ निश्चित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उन सिद्धान्तों का पालत करते हुए ही किसी को वेद का अर्थ समझने का यत्न करना चाहिये। तभी उसके विशेषणों के सम्बन्ध में कल्पना करनी चाहिये।

हम यहाँ पर संक्षेप में उन सिद्धान्तों का उल्लेख कर देना चाहते हैं। उन सिद्धान्तों के अनुसार ही 'सोम' शब्द के अर्थ ज्ञात किये जाने चाहियें। उसके बाद ही उसके गुणों और कार्यों का वर्णन कर पाना सम्भव होगा।

: २ :

शौनक ने अपने ग्रन्थ 'वृहद्देवता' में लिखा है—

स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मंत्रवित् ॥२२॥
तत् खल्वाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम जायते।
सत्त्वानाँ वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किंचन ॥२३॥

—वृ० दे० १-२२,२३

अर्थात् मन्त्रों के जानने वाले, स्तुतियों के द्वारा देवताओं के नाम से मंत्रों के अर्थ को जानते हैं।

इस कारण कहा जाता है कि अर्थ से ही नाम का ज्ञान होता है। वेद का यथार्थ अर्थ अथवा जो कुछ भी सम्बन्धित बात है वह (देवताओं के) नामों से पता चलती है।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि देवताओं के माध्यम से मन्त्र के विषय का ज्ञान होता है और मन्त्र में वर्णित विषय होने से देवता का ज्ञान होता है।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। मन्त्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ —ऋ० वे० १-१-१

पदच्छेद—अग्निम्, ईळे, पुरः हितम् यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम् ॥

अन्वयार्थ—(यज्ञस्य पुरोहितम् देवम् होतारम् रत्नधातम् ऋत्विजं अग्निं ईळे) यज्ञ के (रचना के) पूर्व काल में (आरम्भ में) हित करने वाले, (जगत् की) अमूल्य वस्तुएं देने वाले, होता (ऋत्विज) की मैं स्तुति करता हूं।

इस मन्त्र का देवता अग्नि है। और इस मन्त्र में अग्नि के ही कुछ कर्मों का वर्णन किया गया है।

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥
—ऋ० २-१२-१

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और इस मन्त्र में इन्द्र के ही कुछ कर्मों का वर्णन किया गया है।

मन्त्र का पदच्छेद इस प्रकार है—

यः, जातः, एव, प्रथमः, मनस्वान् देवः, देवान्, ऋतुना, परि-अभूषत्।
यस्य, शुष्मात् रोदसी, अभ्यसेताम्, नृम्णस्य, मह्‌ना, सः जनासः, इन्द्रः ॥

अन्वयार्थ—(यः मनस्वान् एव प्रथमः जातः) जो मन के गुण वाला (मन की गति से जाने वाला) पहले ही उत्पन्न हुआ;

(देवः देवान् ऋतुना परि-अभूषत्) जो देव (दिव्य गुण वाला) संसार के देवताओं को अपनी कर्तृत्व शक्ति से सुन्दर (उपकारी) बनाता है।

(यस्य शुष्मात् रोदसी नृम्णस्य महना अभ्यसेताम्) जिसके बल से पृथिवी और आकाश अलग-अलग होते हैं और जिसकी सामर्थ्य को महत्वपूर्ण कहा है, जिससे सब डरते हैं;

(सः जनासः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! उसे इन्द्र जानो।

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और इसमें इन्द्र के ही कुछ कर्म वर्णन किये हैं। इसमें कहा गया है कि संसार के सब दिव्य गुण वाले पदार्थों से इन्द्र सबसे पहले उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वेदमन्त्रों पर जो देवता कहा जाता है उसका ही वर्णन मन्त्र में होता है। इस कारण मन्त्र से ही देवता का ज्ञान होता है।

अतएव 'सोम देवता' का अभिप्राय भी हमें वेदमन्त्रों से ही पता करना चाहिये।

इस प्रसंग में हम एक बात और स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वेद में अनेक ऐसे मन्त्र हैं जिन पर देवता के स्थान पर सोम का उल्लेख है। उन मन्त्रों के अतिरिक्त भी अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनके देवता तो अन्य हैं किन्तु जिनमें उनका वर्णन करते हुए भी उनमें 'सोम' शब्द का उल्लेख पाया जाता है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वहाँ पर भी सोम शब्द के वही अर्थ हैं जो कि सोम देवता के अर्थ हैं ?

इस प्रकार तीन समस्यायें उत्पन्न होती हैं। वे हैं—

१. सोम के अर्थ क्या हैं ?
२. देवता के रूप में वेद में सोम का अर्थ एक ही है अथवा कि विभिन्न ?
३. अन्य देवता वाले मन्त्रों में जहाँ सोम शब्द का उल्लेख हुआ है, वहाँ उसका क्या अर्थ है ? और यह भी कि क्या ऐसे स्थानों पर भी सोम के अर्थ विभिन्न हैं अथवा कि एक ही है।

यहाँ पर हम अपनी इस पुस्तिका के प्रयास का निष्कर्ष स्पष्ट कर देना चाहते हैं। वे निष्कर्ष हैं —

१. इन्द्र परमाणु के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति का नाम है।
२. इन्द्र की शक्ति जगत् की रचना में जब कार्य करने लगती है तो परमाणुओं के निबन्धन, जो आपः कहे जाते हैं, बन जाते हैं।
३. आपः तीन प्रकार के हैं। उनके नाम हैं मित्र (इलेक्ट्रोन), वरुण (प्रोटोन) तथा अर्यमा (न्यूट्रोन)।
४. सांख्य के विद्वान् इनका नाम तैजस, वैकारिक और भूतादि अहंकार रखते हैं।
५. परमाणुओं के तीन निबन्धन ही परिमण्डलों (ऐटम्स) को बनाते हैं।
६. परिमण्डलों की काष्ठा (बाउण्ड्री) पर तेजस् अहंकार परिमण्डलीय गति में घूमते रहते हैं। परिमण्डल के मध्य में वरुण के भीतर बहुत बड़े-बड़े अर्यमा निबन्धन घेरे रहते हैं।
७. अर्यमा निबन्धन ही सोम कहाते हैं। इनका सोम नाम इसलिये है क्योंकि ये सर्वथा शान्त, आवेशरहित (चार्जलेस) होते हैं।
८. हमारा वेद-विषयक ज्ञान यह कहता है कि वेद में 'सोम' शब्द का एक ही अर्थ है और वह अर्थ है अर्यमा आपः (न्यूट्रोन पार्टिकल्स)।

प्रथम अध्याय

विषय का विवेचन करते हुए हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि वेद में 'सोम' शब्द मन्त्रों के विषय अर्थात् देवता के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। तथा अन्य मंन्त्रों में जिनमें देवता अर्थात् विषय भिन्न है, उनमें भी यह प्रयुक्त हुआ है। हमारे मतानुसार ऋग्वेद में 'सोम' एक ही अर्थ, अभिप्राय यह कि भूतादि अहंकार (अर्यमा=न्यूट्रोन्स के अर्थों) में ही प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ हम पहले कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जहाँ सोम शब्द का प्रयोग अन्य देवताओं के मन्त्रों में किया गया है।

निम्नलिखित मन्त्र को लीजिये। इसका देवता वायु है --

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अंरकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ऋ० १-२-१

पदच्छेद-- वायो, आ, याहि, दर्शत, इमे, सोमाः, अंरकृताः, तेषां, पाहि, श्रुघी, हवम् ॥

अन्वयार्थ— (दर्शत वायो आ याहि। इमे सोमाः अंरकृताः तेषां पाहि श्रुघी हवम्) हे (ज्ञान से) जानी गई वायु, आओ। ये सोम (जिन) को सजाया हुआ है, उनकी रक्षा करो। यह हमारी पुकार (अभिलाषा) है।

इस मन्त्र में सोम शब्द का प्रयोग बहुवचन में है। अर्थात् कुछ है जो बहु-संख्यक है। वे सजाये हुए हैं उनकी रक्षा के लिए वायु का आह्वान किया गया है।

यहाँ वायु से प्रार्थना की गई है कि जिनको किसी ने सजाकर रखा है, वह आकर उनकी रक्षा करे। इस स्थिति में प्रश्न उत्पन्न होता है कि वायु क्या है और वह किस प्रकार उन सोमों की रक्षा कर सकता है। इस प्रसंग में यदि वायु का अर्थ स्पष्ट हो जाय तो सोम का भी कुछ ज्ञान हो पायेगा।

निरुक्तकार यास्क ने अपने ग्रन्थ में वायु की व्याख्या करते हुए लिखा है

अथातो मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमागामी भवति। वायुः॥ वायुर्वातेः। वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः एतेरिति स्थौलाष्ठीविः अनर्थको वकारः॥ यास्क १०-१

अर्थ --अब मध्यस्थान वाले देवताओं का वर्णन करते हैं। उनमें वायु प्रथम है। वायु वाति अथवा वेति (गति अर्थ वाले से)। स्थौलाष्ठीवि कहता है—'वकार' निरर्थक है। आयु शब्द में 'व' लग जाने से वायु शब्द बनता है।

जब परमाणु की साम्यावस्था भंग होती है तो इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिर्मुख हो जाती है। समीप-समीप परमाणु की विपरीत शक्तियाँ परमाणुओं का आकर्षण और समान शक्तियां परमाणु का विकर्षण करने लगती हैं। इससे परमाणुओं में गति उत्पन्न हो जाती है। यह गति वायु है।

इसको मध्य स्थानीय देवता माना गया है। प्रथम स्थानीय देवता इन्द्र है। वायु की उत्पत्ति इन्द्र के उपरान्त होती है इसलिये इसे मध्य-स्थाना कहा है। विषय विवेचन प्रकरण में हमने एक मन्त्र का उल्लेख किया है। उसमें कहा गया है कि सब देवताओं से प्रथम इन्द्र प्रकट हुआ है। यास्क के कथन में 'स्थाना' से अभिप्राय समय के पूर्वोत्तर से है।

जब परमाणु गतिशील होते हैं तो उनमें ऊष्मा उत्पन्न होती है। इसीलिए वह वायु उष्मा उत्पन्न करने वाली कहा जाता है। इस वायु को मातरिश्वा कहते हैं।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि वेद में गति को ही वायु कहा है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में भी वायु की एक व्याख्या की गई है। एक ऋषि को उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—

स होवाच वायुर्वै गौतम। तत् सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति तस्माद् वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्र ँ सिषतास्यांगानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण सन्दृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति॥

बृहद्० उ० ३-७-२

अर्थ—उस (याज्ञवल्क्य) ने कहा, हे गौतम! वायु ही वह सूत्र है। इस वायु रूप सूत्र के द्वारा ही ये लोक-परलोक और समस्त भूत समुदाय गुंथे हुए हैं। हे गौतम! इसीलिए मरे हुए पुरुष को ऐसा कहते हैं कि इसके अंग विस्रस्त (विक्षीर्ण) हो गये हैं। क्योंकि हे गौतम! वह वायु रूप सूत्र से ही संग्रथित है। (आरुणि ने कहा) याज्ञवल्क्य तुम ठीक कहते हो।

उपरोक्त विवरण प्रस्तुत करने से हमारा अभिप्राय यह है कि वायु एक शक्ति है; उस शक्ति से परमाणु आकर्षित-विकर्षित होते हैं। इससे पदार्थों में गति उत्पन्न होती है और परमाणु परस्पर ग्रथित होते हैं। इसीसे स्थूल पंचभूत बनते हैं।

उपरि उल्लिखित ऋग्वेद के मन्त्र में भी इसी वायु से कहा गया है कि वह सजाये गये, अर्थात् उपयोगी कार्य में नियोजित परमाणुओं,

अणुओं और स्थूल पदार्थों की रक्षा करे। इसका अभिप्राय यह हुआ है कि सोम किसी वस्तु का ही नाम है जो उन पदार्थों में विशेष रूप से विद्यमान है।

ऋग्वेद का अगला मन्त्र, जिसका देवता भी वायु ही है, इस प्रकार है—

वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः।
सुतसोमा अहर्विदः ।। ऋ० १-२-२

पदच्छेद—वायो, उक्थेभिः, जरन्ते, त्वाम्, अच्छ, जरितारः। सुतसोमाः, अहः विदः।

अन्वयार्थ—(वायो जरितारः त्वामच्छ उक्थेभिः जरन्ते। सुतसोमा अहः विदः) हे वायु! भली प्रकार स्तुति करने वाले तुम्हारी, मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हैं। सुत सोम! जिसको दिन (अर्थात् प्रकाश अथवा ज्ञान) द्वारा जाना जाता है।

यद्यपि इस मन्त्र में सोम का परिचय तो नहीं दिया है, किन्तु यह स्पष्ट किया है कि कोई सोम का निर्माता है। और वह ज्ञान से जान जाता है। यहाँ पर भी सोम शब्द बहुवचन में है।

इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में सोम को उत्पन्न करने वाले के विषय में कहा गया है। उपरि उल्लिखित दो मन्त्रों में सोम के विषय में बताया है और यह भी कहा है कि वह बहु-संख्या में हैं। वहाँ पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि उनको ज्ञान से जाना जाता है।

सूक्त का चतुर्थ मन्त्र इस प्रकार है—

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ।। ऋ० १-२-४

पदच्छेद—इन्द्रवायू, इमे, सुताः, उप, प्रयः, भिः आगतम्। इन्दवः वाम, उशन्ति, हि।।

अन्वयार्थ—(इन्द्रवायू इमे सुताः प्रयः भिः उप आगतम्) हे इन्द्र और वायु। उन सन्तानों के प्रयः (अन्न) के साथ (समीप) आओ।

(इन्दवः हि वाम उशन्ति) इन्दु समान (सोम) निश्चय से तुम दोनों को चाहते हैं।

इन मन्त्रों से यह स्पष्ट हो गया है कि सोम इन्द्र और वायु की सन्तान है। ऊपर हमने ऐसे मन्त्रों का उल्लेख किया है जिनका देवता अर्थात् विषय सोम नहीं है। प्रथम दो मन्त्रों का विषय तो वायु होने से उनका देवता वायु है और सूक्त के चौथे मन्त्र का विषय (अर्थात् देवता) इन्द्र और वायु संयुक्त रूप से कार्य करते हुए वर्णन किये गये हैं।

अभी तक यह विदित हो पाया है कि इन्द्र और वायु द्वारा सोम बहु-संख्या में उत्पन्न हो रहे हैं और उनके सजाये जाने पर वायु उनकी रक्षा करता है।

यास्क के प्रमाण से हमने यह भी बताने का यत्न किया है कि वायु गति तथा संगठन करने वाली शक्ति है।

इसी सूक्त में इसी विषय अर्थात् इन्द्र-वायु के विषय पर अगला मन्त्र भी है। वह इस प्रकार है—

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू ।
तावा यातमुप द्रवत् ।। ऋ० १-२-५

पदच्छेद—वायो, इन्द्रः, च चेतथः, सुतानाम्, वाजिनीवसू ।
तौ, आ, यातम्, उप, द्रवत् ।।

अन्वयार्थ—(वायो इन्द्रश्च सुतानां चेतथः) हे वायु और इन्द्र ! सुतों को (सोमों को) जान लेते हो।

(वाजिनीवसू तौ द्रवत् उप आ यातम्) अन्न (सोम बनाने के लिये उपादान अर्थात् असाम्यावस्था में परमाणु) को तुम दोनों शीघ्र बहाते हुए समीप लाओ।

इस मन्त्र में एक और भी बात बताई गई है। वह है—इन्द्र और वायु सृष्टि रचना कार्य के लिए अन्न उपादान के रूप में ग्रहण करते हैं। हमारे विचार में यह अन्न असाम्यावस्था में प्रकृति के परमाणु ही हैं।

अगले अध्याय में हम यह बताने का यत्न कर रहे हैं कि जब अग्नि परमाणुओं की असाम्यावस्था को भंग करती है तो इन्द्र की उत्पत्ति होती है। जो आपः का मूल कारण है। यहाँ हमारा अनुमान है कि अग्नि और वायु उन असाम्यावस्था में हुए परमाणुओं से कुछ निर्माण करता है, जिसे सुत अर्थात् सन्तान कहा है। इस सन्तान में सोम भी एक है। जिसको कोई अलंकृत करता है और वायु जिसकी रक्षा करता है।

अभी तक तो वेद के प्रमाण से इतना ही बताया जा सका है कि बहुत बड़ी संख्या में सोम का निर्माण हो रहा है।

उपरि उल्लिखित मन्त्र (ऋ० १-२-५) से यह आभास मिलता है कि इनको उत्पन्न करने वाले इन्द्र और वायु हैं।

अन्न उस पदार्थ को कहते हैं जिसे आत्मसात् करने वाला उससे कुछ निर्माण करे। मनुष्य भी जब अन्न खाता है तो वह उसको अपने भीतर लेकर शरीर के अंगों को बनाता है।

इसी प्रकार यहाँ यह समझना चाहिये कि इन्द्र और वायु अपनी सन्तान जो सम्भवतया सोम है, उसको बनाने के लिए अन्न अर्थात् असाम्यावस्था में परमाणुओं को, अन्न के रूप में आत्मसात् करते हैं।

द्वितीय ग्रध्याय

इससे पूर्व के ग्रध्याय में हमने बताया है कि ग्रलंकृत सोमों को वायु सुरक्षित करना है। उसके साथ ही हमने यह भी बताया है कि सम्भवतया सृष्टि-रचना कार्य में इन्द्र ग्रौर वायु सोम को बनाते हैं।

इस ग्रध्याय में हम इन प्राकृतिक शक्तियों (वायु ग्रौर इन्द्र) की उत्पत्ति में वेद के मत के विषय में वर्णन कर रहे हैं। 'विषय-विवेचन' में हमने इन्द्र के विषय में एक मन्त्र का उल्लेख किया है। उस मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र सबसे पहले उत्पन्न होने वाला देवता है। देवता का ग्रभिप्राय है दिव्य गुणों से युक्त। इन्द्र देवता है। इसमें ग्रद्वितीय गुण हैं। हम उन गुणों का, इस पुस्तक में वर्णन नहीं कर रहे हैं। इन्द्र का केवल उतना ही वृत्तान्त यहां हमें दे रहे हैं जितना कि उसका सोम से सम्बन्ध है।

इन्द्र सब देवताग्रों से पहले उत्पन्न हुग्रा था, ऐसा उस मन्त्र में कहा गया है। इसका ग्रभिप्राय यह हुग्रा कि यह दिव्य गुण रखने वाला पदार्थ, सृष्टि रचना में सबसे पहले उत्पन्न हुग्रा था। यह किस प्रकार प्रकट हुग्रा था, इसका विवरण शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार दिया गया है —

ग्रसद्वाऽइदमग्रऽग्रासीत्। तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मा-त्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः ॥१॥

स योऽयं मध्ये प्राणः। एषऽएवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यतऽइन्द्रियतेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्धऽइन्धो ह वै तमिन्द्रऽइत्याचक्षते परोऽक्षं परोऽक्षकामा हि देवा स्तऽइद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त ॥२॥

शत पथ० ६-१-१-१, २

ग्रर्थ—पहले यह ग्रसत् ही था। तब कहा गया कि ग्रसत् क्या था? पहले यह ग्रसत् ऋषि ही थे। तब कहा गया कि ये ऋषि कौन थे? प्राण ही ये ऋषि थे। जिन्होंने सबसे पहले इस सृष्टि को चाहा, ग्रौर श्रम किया तथा तप किया ग्रौर खिन्न हो गये। खिन्न का ग्रर्थ है ग्ररिषन् हो गये, इस कारण उनका नाम ऋषि हुग्रा ॥१॥

यह प्राण ही मध्य में इन्द्र है। इसी इन्द्र ने ग्रपनी इन्द्रिय से (पराक्रम से) मध्य में इन प्राणों को दीपित किया। 'इन्ध' ग्रर्थात् दीप्ति करने से 'इन्ध' दीप्ति करने वाला। इसी दीप्ति करने वाले को इन्द्र कहते हैं। इन्द्र परोक्ष है। देव परोक्ष प्रिय होते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के इस उद्धरण का स्पष्ट अभिप्राय है कि रचना आरम्भ होने के समय ऋषि थे। यहां पर ऋषि से अभिप्राय है शान्त स्वभाव वाला। ये साम्यावस्था में परमाणु ही थे। इन शान्त स्वभाव परमाणुओं में इन्द्र छिपकर बैठा हुआ था।

इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति सृष्टि रचना की कामना कर रही थी। ऐसा ही (ऋ० वे० १०-१२९-३, ४) में भी कहा गया है।

इससे आगे कहा गया है कि श्रम से तथा तप से ये परमाणु खिन्न हो गये। इसका अभिप्राय यह है कि साम्यावस्था से वे परमाणु असाम्यावस्था में हो गये। इसमें से इन्द्र प्रकट हुआ। यद्यपि वह पहले से ही परमाणु में विद्यमान था किन्तु छिपा हुआ था।

इसी बात को वेद में भी कहा गया है। सृष्टि रचना के विषय पर एक सूक्त है। (ऋ० १-१६३) इस सूक्त का देवता अर्थात् विषय है 'अश्वाग्निः' अश्वाग्नि का अभिप्राय उस शक्ति से है जो सृष्टि रचना के कार्य को इस प्रकार चलाती है जिस प्रकार कि अश्व रथ को चलाया करते हैं। इस शक्ति का दूसरा नाम अर्वः भी है।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

ऋ० १-१६३-१

पदच्छेद—यत्, अक्रन्दः, प्रथमम्, जायमानः, उत् यन्, उत वा, समुद्रात्, पुरीषात्।

श्येनस्य, पक्षा, हरिणस्य, बाहू, उपस्तुत्यम्, महि, जातम्, ते, अर्वन्॥

अन्वयार्थ—(यत् अर्वन् अक्रन्द्र प्रथमम जायमानः समुद्रात् उत्-यन् उतवा पुरीषात्) हे अर्वन्! जब तुम शोर मचाते हुए पहले अन्तरिक्ष में व्यापक कारण से ऊपर को उठते हुए प्रकट हुए;

व्यापक कारण का अभिप्राय परमात्मा से है।

(श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहु महि जातं ते उपस्तुत्यं) बाज पक्षी के पंखों तथा हरिण की बाहों की तीव्र गति से महान् उत्पन्न हुए स्तुति के योग्य हो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब सृष्टि की रचना आरम्भ होने वाली थी तब परमात्मा की शक्ति उत्पन्न हुई और घोर नाद करती हुई तीव्र गति से अन्तरिक्ष में फैल गई।

इस फैलने वाली शक्ति को मन्त्र में अर्वः कहा है। अर्व का अर्थ अश्व है। यह ईश्वरीय महान् शक्ति है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र, एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।।

ऋ० १-१६३-२

पदच्छेद—यमेन, दत्तम्, त्रितः, एनम्, आयुनक्, इन्द्र, एनम्, प्रथमः अधि, अतिष्ठन् ।

गन्धर्वः, अस्य, रशनामगृभ्णात्, सूरात्, अश्वम्, वसवः, निः, अतष्ट ।।

अन्वार्थ—(यमेनदत्तं त्रितः आयुनक्) यम (परमात्मा) द्वारा दी हुई लगाम जो इस त्रित ने जोप ली (स्वीकार कर ली)।

(एनम्, प्रथमः, इन्द्र, अध्यतिष्ठन) इस पर (त्रित पर) पहले इन्द्र अधिष्ठित था।

(गन्धर्वः अस्य रशनाम् अगृभ्णात्) नियन्त्रण में आये परमाणु ने (त्रित ने) जीप ली (स्वीकार कर ली)।

(सूरात्, अश्वं वसवः निः अतष्ट) बलवान से (परमात्मा के तेज से) हे वसवो ! (परमाणुओं) भली प्रकार स्वीकार कर लो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि परमात्मा के तेज की लगाम त्रित पर आरूढ़ हो गई। त्रित से अभिप्राय परमाणुओं की साम्यावस्था है। इसमें तीन प्रकार की शक्तियाँ सन्तुलित थीं। इन तीन के गुट को त्रित कहा गया है।

साम्यावस्था में परमाणु का चित्र इस प्रकार होगा—
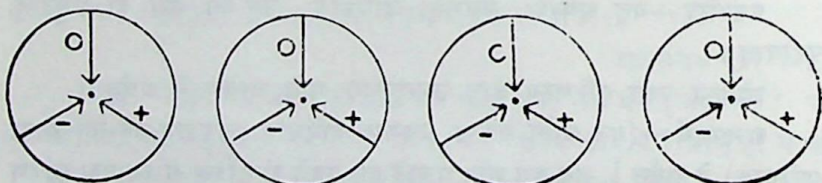
इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में हम बता आये हैं कि सोम इन्द्र और वायु से उत्पन्न होता है। इन्द्र की उत्पत्ति अर्थात् प्रकट होने की बात इन दो मन्त्रों (ऋ० १-१६३-१, २) के और शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से बताई गई है। वायु की उत्पत्ति के विषय में अगले मन्त्र में बताया जा रहा है।

जब ऐसा, जैसाकि ऊपर के चित्रों में दिखाया गया है, हो गया; अर्वः शक्ति की लगाम परमाणु पर लग गई, तो फिर यह हुआ—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ।।

ऋ० १-१६३-३

पदच्छेद—असि, यमः, असि, आदित्यः, अर्वन्, असि, त्रितः, गुह्येन, व्रतेन।

असि, सोमेन समया, विपृक्त, आहुः, ते, त्रीणि, दिवि, बन्धनानि ।।

अन्वयार्थ—(अर्वन् ! यमः असि आदित्य असि) हे अर्वन् ! तू यम (नियन्त्रण करने वाला) है। तू प्रकाशमान है।

(त्रितः गुह्येन व्रतेन असि) यह त्रित साम्यावस्था से फटकर असाम्यावस्था में हो गये।

(ते आहु त्रीणि दिवि बन्धनानि) इस पर कहा जाता है कि तीन प्रकार के परमाणुओं के संयोग बन जाते हैं।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब परमात्मा की शक्ति, जिसे अर्वः कहा गया है परमाणु पर आरूढ़ हो जाती है, तब परमाणु की साम्यावस्था भंग हो जाती है। तब इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिर्मुख हो जाती है।

इसको इस प्रकार चित्रवत् किया जा सकता है—
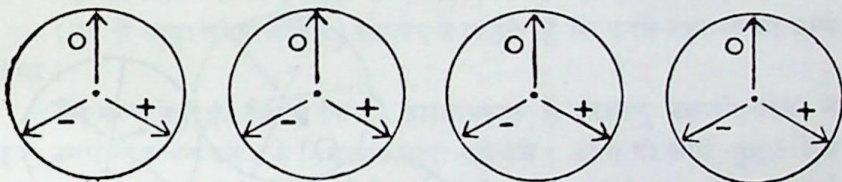
शक्ति के बहिर्मुख होने पर परस्पर आकर्षण-विकर्षण से निबन्धन बनने आरम्भ हो जाते हैं क्योंकि परमाणु पर तीन प्रकार की शक्ति पृथक्-पृथक् प्रकट होती हैं, इस कारण ये निबन्धन बन जाया करते हैं।

विपरीत शक्तियाँ परस्पर आकर्षण (अट्रैक्शन) करती हैं। और समान शक्तियाँ विकर्षण (रिपल्शन) करती हैं। इस आकर्षण विकर्षण से परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है।

गति ही वायु है। इस प्रकार वायु की उत्पत्ति मानी जाती है। इस वायु से ही निबन्धन (परमाणुओं के संयोग) बन जाते हैं। पृष्ठ २२ के चित्रों में यही दिखाया गया है।

निबन्धन केवल तीन ही प्रकार के बनते हैं। उसका कारण यह है कि निबन्धनों पर शेष आवेश होता है। आवेश तीन ही प्रकार का हो सकता है। अतः निबन्धन भी तीन ही प्रकार के हो सकते हैं।

चित्र में भी यही दिखाया गया है।

एक संयोग पर शेष आवेश है सत्व (+) का। (चित्र १) दूसरे पर शेष आवेश है रजस् (—) का। (चित्र २) और तीसरे पर शेष आवेश है शून्य (०) का। (चित्र ३)

इन निबन्धनों का क्या नाम है और ये क्या कार्य करते हैं इस विषय पर आगे प्रकाश डाला गया है।
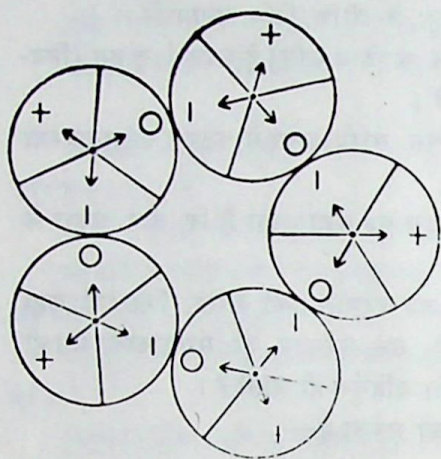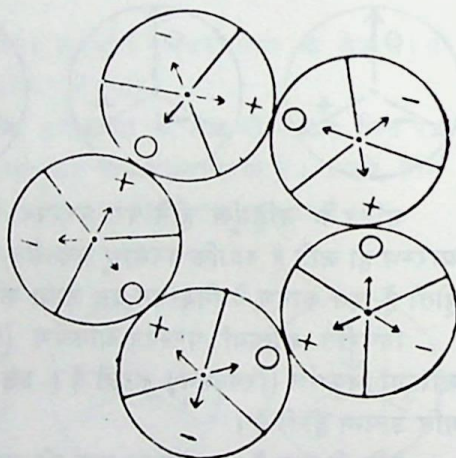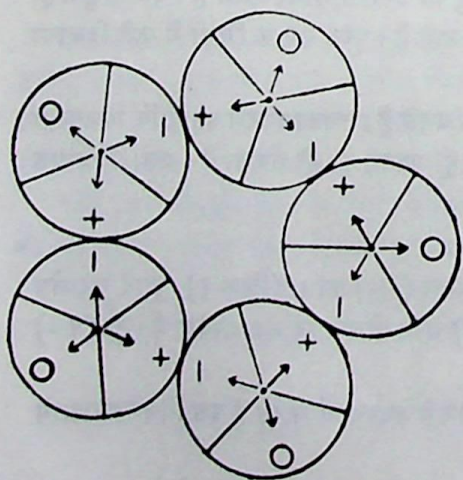
चित्र १
चित्र २
चित्र ३

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीणि अप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ।।

ऋ० १-१६३-४

पदच्छेद—त्रीणि, ते, आहुः दिवि, बन्धनानि, त्रीणि, अप्सु, त्रीणि, अन्तः, समुद्रे ।

उतेव, मे, वरुणः, छन्त्सि, अर्वन्, यत्र, ते, आहुः, परमम् जनित्रम् ।।

अन्वयार्थ—(ते आहुः त्रीणि बन्धनानि दिवि (तानि) त्रीणि अप्सु (तानि) त्रीणि अन्तः समुद्रे ।) वे तीन निबन्धन द्यु लोक में हैं। वही तीन आपः में हैं। वही तीन अन्तरिक्ष में हैं।

(उतेव मे वरुणः छन्त्सि अर्वन्) और हे अर्वन् ! तू वरुण द्वारा छन्द कहता है, मेरे लिए।

यहां विभक्ति व्यत्यय (वरुणः से वरुणाय) किया गया है।

(यत्र ते आहुः परमं जनित्रं) इस पर वे कहते हैं कि इनसे ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ।

इस मन्त्र में कहा गया है कि जो साम्यावस्था से परमाणु असाम्यावस्था में हुए, उनमें निबन्धन बने। ये निबन्धन आपः कहे गये। इनसे दो कार्य हुए। एक तो वरुण आपः से वेदों के छन्द प्रसारित हुए और दूसरे कार्य जगत् के सब पदार्थ परिमण्डलों (ऐटम्स) से बने हैं। परिमण्डल (ऐटम्स) परिमण्डलीय कणों से बने हैं। परिमण्डलीय कण भी केवल तीन ही प्रकार के हैं। इस कारण हमारा मत है कि आपः ही परिमण्डलीय कण (ऐटोमिक पार्टिकल्स) हैं। ये भी तीन ही प्रकार के हैं और इस मन्त्र में कहा गया है कि इनसे सब संसार के पदार्थ बने हैं।

ये आपः प्रकृति की असाम्यावस्था में परमाणुओं से बने हुए बताये गये हैं। इसी बात को विस्तृत रूप से आगे के मन्त्रों में स्पष्ट किया गया है।

इन मन्त्रों का देवता अर्थात् विषय है 'मित्र और वरुण'।

ऋग्वेद के इस सूक्त का एक मन्त्र है—

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त
रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः।।

ऋ० वे० १-१३६-२

पदच्छेद—अदर्शि, गातुः उरवे, वरीयसी, पन्थाः, ऋतस्य, सम्, अयंस्त, रश्मिभिः, चक्षुः, भगस्य, रश्मिभिः।

द्युक्षम्, मित्रस्य, सादनम्, अर्यम्णः, वरुणस्य च।

अथ, दधाते, बृहत्, उक्थ्यम्, वयः, उप-स्तुत्यम्, बृहद्, वयः ।।

अन्वयार्थ—(ऋतस्य पन्था गातु: वरीयसी उरवे रश्मिभि: समयंस्त अदर्शि)। ऋत (प्राकृतिक नियमों पर) चलने वाली श्रेष्ठ फैली हुई (असाम्यावस्था में प्रकृति) रश्मियों से संयुक्त दिखाई देती है।

(द्युक्षं सादनं मित्रस्य वरुणस्य अर्यम्णो रश्मिभि: चक्षु:) मित्र वरुण अर्यमा का द्युलोक में स्थान ऐश्वर्य की किरण से (बन रहा) दिखाई देता है।

(अथ उक्थ्यम् उपस्तुत्यं बृहद्वय: दधाते) और कहने योग्य तथा स्तुति योग्य बहुत बड़े (ये दोनों मित्र और वरुण) धारण करते हैं।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि असाम्यावस्था में प्रकृति बहुत विस्तृत स्थान में फैली हुई है। परमात्मा के तेज अर्थात् अर्व: से संयुक्त दिखाई देती है। यह ऋ० १-१६३-२ में बताया जा चुका है कि अर्व: परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाता है।

यहाँ यह कहा गया है कि असाम्यावस्था में प्रकृति के परमाणुओं पर तेज की रश्मियाँ संयुक्त दिखाई देती हैं। प्रकृति नियमानुसार कार्य करती है। अर्थात् आकर्षण विकर्षण के नियमों के अधीन गति करने लगती है।

इस प्रकार मित्र, वरुण और अर्यमा द्युलोक में बनते हैं। उनमें से दो, मित्र और वरुण बहुत बड़ी स्तुति के योग्य कार्य करते हैं।

मित्र और वरुण अर्यमा आप: हैं, जिनका हम ऊपर ऋ० १-१६३-३, ४ में वर्णन कर आये हैं। ये परमाणुओं के निबन्धन हैं। इन्हें वहाँ आप: कहा गया था। अर्थात् तीन आप: (ऐटोमिक पार्टिकल्स) मित्र, वरुण और अर्यमा हैं।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है –

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा
सचेते दिवे दिवे जागृवांसा दिवे दिवे।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जन:॥

ऋ० १-१३६-३

पदच्छेद—ज्योतिष्मतीम्, अदितिम्, धारयत् क्षितिम्, स्व:वतीम्, आ, सचेते, दिवे, दिवे, जागृवांसा, दिवे-दिवे।

ज्योतिष्मत्, क्षत्रम् आशाते, आदित्या:, दानुन:, पती।

मित्र:, तयो, वरुण:, यातयत् जन:, अर्यमा, यातयत्-जन:॥

अन्वयार्थ—(ज्योतिष्मतीम् अदितिम् स्वर्वतीम् धारयत् क्षितिम्) अन्तरिक्ष में ठहरी शक्तिशाली प्रकृति को ये दो धारण करते हैं। (दो से अभिप्राय मित्र और वरुण है। यही मन्त्र के देवता अर्थात् विषय हैं।)

(आ सचेते दिवे-दिवे जागृवांसा दिवे-दिवे) प्रतिदिन (निरन्तर) ये दोनों (मित्र और वरुण) सचेत हुए सेवन करते हैं (रचना-कार्य करते हैं)।

(ज्योतिष्मत् क्षत्रं आदित्या दानुनः पती आशाते) अदिति (प्रकृति के) दो पुत्र तेजोमय और बल को दान में पाते हुए, उसका भोग करते हैं।

(तयोः मित्रः वरुणः यातयज्जनः अर्यमा यातयज्जनः) उत्पन्न हुए दोनों मित्र और वरुण का अर्यमा भजने वाला है। उनका प्रशंसक है और उनसे कुछ आकांक्षा रखता है।)

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रकृति के दो बलशाली, सजग तथा क्रियाशील पुत्र हैं। अर्यमा उतना बलवान तो नहीं तदपि वह भी इन दोनों का आश्रित और प्रशंसक है। इसी विषय का अगला मन्त्र है--

अयँ मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपाने-
ष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे॥ ऋ० १-१३६-४

पदच्छेद—अयम्, मित्राय, वरुणाय, शं-तमः, सोमः भूतु, अवपानेषु, आ-भगः, देवः, देवेषु, आ-भगः।
तम्, देवासो, जुषेरत, विश्वे, अद्य, सजोषसः।
तथा, राजाना, करथः, यत्, ईमहे, ऋतवाना, यत्, ईमहे॥

अन्वयार्थ—(अयं शंतमः सोमः मित्राय वरुणाय भूतु आ भगः अव-पानेषु देवो देवष्वाभगः) यह अत्यन्त शान्त सोम, मित्र और वरुण के लिए ग्रहण किये जा रहे ये देव ऐश्वर्यवान् होवें।

(तं देवासः जुषरत विश्वे अद्य सजोषसः) उसको सम्पूर्ण देवता गण तुरन्त संयुक्त हो काम में लगावें (शान्त सोम को काम में लगावें)।

(तथा राजाना करथः यत् ईमहे ऋतवाना यत् ईमहे) तुम दोनों मित्र और वरुण सजग हुए हुए ऋतों के पालन करने वालों को हम चाहते हैं (पाने की इच्छा करते हैं)।

इस मन्त्र में सोम, मित्र और वरुण तीनों का वर्णन है। यह कहा है कि सोम आवेशरहित है। इस पर भी परमात्मा से तीनों के लिए प्रार्थना की गई है।

मन्त्र में यह भी संकेत है कि सोम अन्य दोनों के लिए है। अर्थात् मित्र और वरुण का यह काम करता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अर्यमा के लिए सोम का नाम लिया गया है। इसी विषय का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो
दाश्वांसं मर्त्तमंहसः।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्।
उक्थैर्य एनोः परिभूषिति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम्॥
ऋ० १-१३६-५

पदच्छेद—यः, मित्राय, वरुणाय, अविधत्, जनः, अनर्वाणम्, तम्, परि, पातः, अंहसः, दाश्वांसम्, मर्तम्, अंहसः ।

तम्, अर्यमा, अभि, रक्षति ऋजु-यन्तम्, अनु, व्रतम् ।

उक्थैः यः, एनोः, परिभूषति, व्रतम्, स्तोमैः, आभूषति, व्रतम् ।।

अन्वयार्थ—(यः जनः मित्राय वरुणा अविधत् तम् अनर्वाणं परिपातः अंहसः दाश्वांस मर्तम्) जो उत्पन्न हुए मित्र और वरुण के लिए सेवा करते हैं उन शक्ति-विहीनों की सेवा की रक्षा करो । (मरने से बचाओ ।)

यहाँ शक्तिविहीनों से अभिप्राय है सोम अर्थात् अर्यमा । वे ही आवेश से रहित हैं। उनको क्यों बचाया जाय ? वह इसलिए कि वे भी रचना-कार्य में विशेष योगदान करते हैं । उनके योगदान का उल्लेख यथास्थान आयेगा ।

(तम् यः उक्थैः ऋजुयन्तं अनुव्रतम् अर्यमा अभिरक्षति एनोः व्रतं परिभूषति व्रतं स्तोमः आभूषति) जो (दो) ऊपर स्तुति किये गये हैं उनमें जो ऋजु गति वाला है, अर्यमा उसका रक्षा करता है । और नियम का पालन करता है पदार्थों को सुन्दर बनाता है ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि अर्यमा, जिसे सोम भी कहा है, शक्ति विहीन होते हुए भी उपकारी कार्य करता है । सोम के एक कार्य का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है । वह कार्य है, जो ऋजु गति से चलते हैं, वह उनकी गति की रक्षा करता है ।

ऋजु गति का अर्थ है सामान्य गति । प्रकृति निर्मित जगत् के पदार्थों में सामान्य गति का अर्थ है अण्डाकार गति (इलिप्टिकल मोशन) । सोम अर्थात् अर्यमा परिमण्डल के केन्द्र में होता है । उसका द्रव्यमान बहुत बड़ा है । इस कारण यह अपनी अभिकेन्द्रीय शक्ति से सीमावर्ती मित्र आपः (इलेक्ट्रोन्स) को अपनी अपकेन्द्रीय शक्ति से दूर जाने नहीं देता ।

इस अध्याय में हमने यह बताया है कि इन्द्र त्रिगुणात्मक है । इस कारण इनके गुणों के आकर्षण-विकर्षण के कारण तीन प्रकार के परमाणुओं के निबन्धन बन जाते हैं । ये निबन्धन आपः हैं । इनके पृथक्-पृथक् नाम हैं—मित्र, वरुण और अर्यमा । मित्र और वरुण तो रजस् और सत्वगुण प्रधान परमाणुओं के निबन्धन अर्थात् आपः हैं । तीसरी प्रकार के आपः अर्यमा कहे जाते हैं । इन पर किसी प्रकार की शक्ति का आवेश नहीं होता । इसी कारण इनको सोम अर्थात् आवेशरहित कहा जाता है । ऋ० १-१३६-४ में तो स्पष्ट रूप में अर्यमा आवेश रहित आपः के लिए सोम की संज्ञा दी गई है ।

तृतीय अध्याय

अभी तक हम इस निष्कर्ष पर पहुंच पाये हैं कि ऋग्वेद के एक मन्त्र में एक विशेष प्रकार के आपः के लिए 'सोम' शब्द का प्रयोग हुआ है। सोम आपः आवेश रहित हैं।

उस मन्त्र में यह भी कहा गया है कि सोम आपः अन्य दो प्रकार के आपः के लिए भजन करता है। भजन से अभिप्राय है कि वह उन दो अन्य आपः की सेवा करता है। वहाँ पर एक प्रकार की सेवा का भी वर्णन किया गया है। वह यह कि परिमण्डल में सीमावर्ती आपः की गति को यह नियन्त्रण में रखता है।

तीनों आपः इन्द्र की सन्तान हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति से परमाणुओं के निबन्धन बनते हैं और उन निबन्धनों में सोम एक है। इसी सम्बन्ध में ऋग्वेद के १-४३ में भी वर्णन आया है।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळहुष्टमाय तव्यसे।
वोचेम शंतमं हृदे ।। ऋ० १-४३-१

पदच्छेद—कत्, रुद्राय, प्रचेतसे, मीळहुः तमाय, तव्यसे।
वोचेम, शम्-तमम्, हृदे ।।

अन्वयार्थ—(कत् शन्तमं तव्यसे हृदे रुद्राय मीळहुष्टमाय प्रचेतसे वोचेम) कब अत्यन्त शान्त हृदय अति वृद्ध गुहा में रुद्र अत्यन्त सुखकारक के लिए सजग होने के लिए कहा।

अति शान्त प्राचीन गुहा का अभिप्राय है साम्यावस्था में परमाणु के भीतर बैठे हुए। भीतर बैठा हुआ था रुद्र अर्थात् इन्द्र। शक्ति के सन्तुलित होने के कारण वह भी शान्त था। उस रुद्र के लिए कब कहा गया कि वह सचेत अर्थात् सक्रिय हो जाय।

यहाँ कहने वाले का नाम नहीं बताया गया है। तदपि यह स्पष्ट है कि जिसने सृष्टि रचना की कामना की थी, उसी ने यह भी कहा होगा।

इन्द्र परमाणु के हृदय में बैठा हुआ था और शान्त था।

इस मन्त्र का देवता रुद्र है। हमारा यह सुविचारित मत है कि यहां पर रुद्र से अभिप्राय इन्द्र से है। रुद्र का अभिप्राय है रुष्ट हो जाने पर जो नष्ट करने वाला है।

अतः यह इन्द्र ही हो सकता है, कोई अन्य नहीं।

सूक्त का अगला मन्त्र निम्नोद्धृत है। इस मन्त्र का देवता भी रुद्र ही है—

यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे।
यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ ऋ० १-४३-२

पदच्छेद—यथा, नः, अदितिः, करत्, पश्वे, नृभ्यः, यथा, गवे।
यथा, तोकाय, रुद्रियम् ॥

अन्वयार्थ—(यथा अदितिः पश्वे गवे नृभ्यः यथा तोकाय यथा नः यथारुद्रियम् करत्।) जैसे पृथिवी, पशु, पक्षी, मनुष्य, गौओं के लिए हमारे बच्चों के लिए करती है, वैसे ही उस रुद्र के लिए (परमात्मा द्वारा) किया जाय।

इसी सूक्त के अगले मन्त्र का देवता मित्र और वरुण है।

मन्त्र इस प्रकार है—

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेनति।
यथाविश्वे सजोषसः ॥ ऋ० १-४३-३

पदच्छेद—यथा, नः, मित्र, वरुणः, यथा रुद्रः, चिकेतति।
यथा विश्वे, सजोषस : ॥

अन्वयार्थ—(यथा न मित्रः वरुणः चिकेतति यथा। यथा (तथा) रुद्रः विश्वे सजोषसः)।

जैसे हमारे लिए मित्र और वरुण चेतन हुए हैं वैसे ही विश्व में रुद्र (इन्द्र) सबको सक्रिय कर देता है।

इससे पूर्व के दो मन्त्रों का विषय तो रुद्र था किन्तु इस तृतीय मन्त्र का विषय मित्र और वरुण है।

इन मंत्रों में यह बताया गया है कि सृष्टि आरम्भ के समय परमात्मा ने परमाणु की गुहा में बैठे इन्द्र को सक्रिय कर दिया।

इन्द्र के सक्रिय होने का अभिप्राय इससे पूर्व के अध्याय में बताया जा चुका है कि इससे मित्र और वरुण आपः का सक्रिय होना है। इन्द्र का तृतीय अंश सोम तो आवेश-रहित होता है।

जिस प्रकार परमात्मा ने इन्द्र को सक्रिय किया है उसी प्रकार इन्द्र भी समस्त जगत् को सक्रिय करता है।

ऋग्वेद के इस १-४३ सूक्त के प्रथम दो मन्त्र जो हमने ऊपर दिये हैं उनका विषय रुद्र अर्थात् इन्द्र है। उन मन्त्रों में यह बताया गया है कि इन्द्र साम्यावस्था में परमाणु के मध्य में स्थित था। वह कब सक्रिय हुआ, इसका उल्लेख करते हुए हम कह आये हैं कि सृष्टि रचना के आरम्भ में जब अश्वाग्नि परमाणु पर आरूढ़ हुई (ऋ० १-१६३-१, २)।

इस सूक्त के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र के सक्रिय होने का अभिप्राय है मित्र और वरुण का सक्रिय होना। इसका वर्णन ऋ० १-१६३-१, २ में

किया जा चुका है। हमने यह भी बताने का यत्न किया है कि तृतीय प्रकार का आप: जिसे अर्यमा कहते हैं, उसको सोम के नाम से भी स्मरण किया जाता है।

नीचे इसी सूक्त के मन्त्र संख्या ७ ८, ९ उद्धृत किये जा रहे हैं।

इन मन्त्रों का देवता सोम है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि सोम का इन्द्र तथा मित्र और वरुण से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मन्त्र इस प्रकार है --

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्।
महि श्रवस्तुविनृम्णम्॥ ऋ० १-४३-७॥

पदच्छेद—अस्मे, सोम, श्रियम्, अधि, नि, धेहि, शतस्य, नृणाम्।
महि, श्रवः, तुवि-नृम्णम्।

अन्वयार्थ—(सोम नृणां शतस्य श्रियं अस्मे महि तु नृम्णं श्रवः अधि नि धेहि।)

हे सोम! सैकडों (बहुत बड़ी संख्या में) मनुष्यों का कल्याण प्रभूत मात्रा में अन्न तथा बल देकर करते हो।

इस मन्त्र में कहा गया है कि सोम बहुत बड़ी मात्रा में अन्न और बल देने वाला है। बल (एनर्जी) और भोज्य सामग्री वनस्पतियों से मनुष्यों को प्राप्त होती है। वनस्पतियों में ऊर्जा और अन्न सूर्य से प्राप्त होता है। (यजु: १-१)

ऊर्जा और अन्न सूर्य की रश्मियों से आते हैं। यह कहा गया है कि धाराओं के रूप में आप: धरती पर आ रहे हैं। सोम भी उन धाराओं में ही आता है।

इस प्रकार इस मन्त्र में उस बात को कहा गया है जो ऋ० १-१३६-४ में कही गई है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

उससे अगला मन्त्र इस प्रकार है। इसका देवता भी सोम ही है—

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्तः।
आ न इन्दो वाजे भज॥ ऋ० १-४३-८

पदच्छेद—मा, नः, सोम-परिबाधः, मा, अरातयः, जुहुरन्त।
आ, नः, इन्दो, वाजे, भज।

अन्वयार्थ—(मा सोम परिबाधः मा अरातयाः नः जुहुरन्त) सोम के मार्ग में बाधा उपस्थित करने वाले अरातय (शत्रुओं को) हम पर बलात्कार न करने दो।

(इन्दो आ बाजे नः भज) हे सोम! बलयुक्त कर्म में हमारी सहायता करो।

इस मन्त्र में उस बात का ही समर्थन पाया जाता है जोकि उपरि लिखित मन्त्र में कही गई है। उस मन्त्र में कहा गया था कि सोम बल और अन्न का भण्डारी है। यहां यह अभिलाषा व्यक्त की गई है कि वह उस बल और अन्न मे हमारी सहायता करे। कहा गया है कि सोम इस धरती पर बिना रोक-टोक के आवे और वह उनमें आवे जो अरातयः नहीं हैं। अरातय का अर्थ शत्रु भी होता है।

तब इसका अभिप्राय यही होगा कि वह उन वनस्पतियों में न आये जोकि विषाक्त हैं। अरातय का एक अर्थ यह भी होता है कि जो लेकर वापस न दे। यह अर्थ भी उपयुक्त ही है। अर्थात् सोम उन ओषधियों में न आये जो उनको (मनुष्यों को) भोजन के लिए दी जाने वाली न हों।

इसका अगला मन्त्र भी सोम के विषय पर ही है।

मन्त्र है—

याग्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य।
मूर्द्धा नाभा सोम वेन आभूषन्ती: सोम वेद: ॥　　ऋ० १-४३-६

पदच्छेद—या:, ते, प्रजा:, अमृतस्य, परस्मिन्, धामन्, ऋतस्य।
मूर्द्धा, नाभा, सोम, वेन, आभूषन्ती:, सोम, वेद: ॥

अन्वयार्थ—या: ते प्रजा मूर्द्धा नाभा वेन: परस्मिन् धामन्नृतस्य सोम आभूषन्ती: परि वेद:।

जो तेरी प्रजायें माथे पर (केन्द्र स्थान पर) और कमनीय (सुन्दर दिखाई देने वाले) स्थान पर हैं, जहाँ पर अनादि ऋतों का पालन होता है, सोम उनको सजायें।

इस मन्त्र में यह भी कहा गया है कि सोम मनुष्य शरीर के मस्तिष्क, नाभि और सुन्दर लगने वाले स्थानों की शोभा बढ़ायें। ये स्थान इन्द्र द्वारा शरीर में सृजमान होते हैं। शरीर के धातु शरीर में होने वाले रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनते हैं। वह रासायनिक शक्ति इन्द्र की है। रासायनिक कर्म में धन आवेश और ऋण आवेश मित्र और वरुण के कारण होते हैं।

वरुण धन और मित्र अर्थात् ऋण आवेश के संयोग का परिणाम रासायनिक कार्य होता है। इस लिए शरीर में धातु आते तो इन्द्र की शक्ति से ही हैं। यह शक्ति है वरुण और मित्र की।

इस मन्त्र में कहा गया है कि शरीर में माथे पर तेज, नाभि में बल और शरीर के सुन्दर स्थान सोम सजाता है। सोम रासायनिक प्रक्रिया में भाग नहीं लेता। उसका कारण यह है कि वह आवेशरहित होता है।

संसार के निर्मित पदार्थ इन्द्र की ही प्रजा कहाते हैं। उनमें भी सोम वही काम करता है जो मनुष्य शरीर में करता कहा गया है। वस्तुओं को सुन्दर बनाने में इसका मुख्य भाग होता है।

ऋग्वेद १-२-१ में कहा गया है कि वायु सोमों की, पदार्थों में रक्षा करता है।

सोम वस्तुओं में बल और उपादान भरने का कार्य करता है।

चतुर्थ अध्याय

विगत अध्यायों में हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि वेद के मतानुसार सोम आवेशरहित आपः ही हैं। एक ओर जहां मित्र और वरुण आपः जगत् की रचना में सक्रिय भाग लेते हैं वहां सोम निर्मित पदार्थों को सुन्दर, सुदृढ़ और स्थायी बनाने के कार्य में भाग लेता है।

वेद-प्रमाण से हमने यह भी स्पष्ट करने का यत्न किया है कि असाम्यावस्था में निबन्धनों का नाम आपः है। ये तीन प्रकार के हो सकते हैं। उनमें से दो तो हैं मित्र अर्थात् इलैक्ट्रोन और वरुण अर्थात् प्रोटोन। ये दोनों आवेशयुक्त हैं। मित्र पर ऋण विद्युत का आवेश होता है और वरुण पर घन विद्युत का आवेश होता है।

सोम जिसे अर्यमा भी कहा है आवेश रहित अर्थात् न्युट्रल होता है और वर्तमान विज्ञान के अनुसार उसको न्यूट्रोन कहा जाता है।

इसके बाद हम आगे ऋ० १०-१७ के कुछ मन्त्रों का उल्लेख कर रहे हैं। इस सूक्त में अनेक देवताओं अर्थात् विषयों के मन्त्र हैं। मन्त्र संख्या १० का देवता आपः है और ११ से १३ तक तीन मन्त्रों का देवता 'आपः सोमो वा' है। इसका अभिप्राय यह है कि आपः अर्थात् सोम इन मन्त्रों का देवता है। मन्त्र संख्या १४ पुनः आपः के विषय पर है। हम ये पांचों मन्त्र यहां दे रहे हैं। इन मन्त्रों के विषय से भी यह स्पष्ट है कि सोम अर्यमा का पर्यायवाचक है। हमारी भी यही धारणा है और उसकी पुष्टि इनसे हो जाती है।

मन्त्र इन प्रकार है—

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥

ऋ० १०-१७-१०

पदच्छेद—आपः, अस्मान्, मातरः, शुन्धयन्तु, घृतेन, नः घृतप्वः पुनन्तु। विश्वम्, हि, रिप्रम्, प्रवहन्ति, देवीः, उत्, इत्, आभ्यः, शुचिः आ, पूतः, एमि ॥

अन्वयार्थ—(घृतप्वः आपः मातरः अस्मान् शुन्धयन्तु घृतेन नः पुनन्तु। हि देवी विश्वं रिप्रं प्रवहन्ति उत् इत् आभ्यः पूतः शुचि आ एमि।)

रश्मियों से सिक्त आपः मातातुल्य हमको (रश्मियों से) शुद्ध और पवित्र (घी से) करें। निश्चय ही वे देवियां (आपः) समस्त दोषों को बहाकर ले जाती हैं। इन (आपः) के द्वारा पवित्र हुआ (जगत् में) उन्नति को प्राप्त होता हूं।

घृतप्व का अर्थ है घी से सिक्त। जिस प्रकार देव यज्ञ में जलाने से पूर्व समिधा को घी से सिक्त किया जाता है। परन्तु आपः तो परमाणुओं के निबन्धन हैं। इनका निर्माण तो हुआ था परमात्मा की आदि शक्ति के परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ होने के लिए। अतः यहाँ पर घृतप्व का अर्थ है वे आपः जो शक्ति की रश्मियों से सराबोर हैं। इस मन्त्र में कहा गया है कि ऐसे ही अनादि शक्ति अग्नि से सिक्त आपः हम को शुद्ध करें।

जहाँ कहीं भी किसी वस्तु का निर्माण हो रहा हो, वहाँ शुद्ध करने का अभिप्राय है कच्चे माल से उपयोगी माल बनाना। इस कारण पुनन्तु का अर्थ है हमारे लिये उपयोगी पदार्थ बनाये। प्रकृति के परमाणुओं से उपयोगी वस्तुयें बनाने की कामना की गई है।

आपः को मातरः कहा गया है। उसका कारण यह है कि यह समस्त जगत् के पदार्थों का निर्माण करने वाली है। यही कारण है कि आपः स्त्री लिंग के अन्तर्गत आते हैं।

इस मन्त्र में सोम का उल्लेख नहीं है। तदपि हमने इस मन्त्र को यहां उद्धृत करना उपयोगी समझा है। क्योंकि अगले तीनों मन्त्रों का विषय 'आपः सोमा वा' अर्थात् वे आपः जो सोम कहे जाते हैं, है। क्योंकि आपः के कार्य की इस मन्त्र में व्याख्या है, उससे अगले मन्त्रों की व्याख्या में सहायता मिलेगी।

अगला मन्त्र है—

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमां अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तम् द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥

ऋ० १०-१७-११

पदच्छेद—द्रप्सः, चस्कन्दः, प्रथमान् अनु, द्यून, इमम्, च, योनिम्, अनु, यः, च, पूर्वः।

समानम्, योनिम्, अनु, सम्, चरन्तम्, द्रप्सम्, जुहोमि, अनु, सप्त, होत्राः॥

अन्वयार्थ—(द्रप्सः प्रथमान् द्यून अनु चस्कन्द। इमं योनिं च यश्च पूर्वः अनु। समानं योनिं अनु संचरन्तम् द्रप्सं सप्त होत्राः अनु जुहोमि।)

बूंदों में गिरता हुआ पहले द्युलोक में गया हुआ उस योनि को प्राप्त हुआ।

समान स्थान को अर्थात् दूसरों के साथ-साथ चलते हुए बूंदों से ये सात प्रकार के यज्ञ करते हैं। (विभक्ति प्रत्यय है।)

द्रप्सः का शाब्दिक अर्थ है बूंदों में गिरता हुआ। यह कहा जाता है कि तमस के बड़े-बड़े निबन्धन बन जाते हैं। उन निबन्धनों को तोड़ने के लिये इन्द्र को (मित्र को) और आदि अग्नि को कई प्रकार के यत्न करने पड़ते हैं। वे निबन्धन टुकड़े-टुकड़े हो कर फैलते हैं। तब वे बूंदों की भाँति बिखर जाते हैं। इस कारण इन टुकड़ों को बूंदें कहा गया है।

सोम के ये टुकड़े सात प्रकार के यज्ञ करते हैं। यज्ञ से अभिप्राय रचना कार्य ही है। ये तमस् आपः ही सोम के नाम से स्मरण किये जाते हैं।

इस मन्त्र में जो विशेष बात कही गई है वह यह है कि सोम के बड़े-बड़े खण्ड पहले द्युलोक में थे। वहाँ से वे इन्द्र के वज्र से टूटे तो टुकड़े-टुकड़े हो कर सृष्टि-रचना कार्य करने लगे।

इसका अगला मन्त्र भी, 'सोमो आपः वा' विषय पर ही है। जो इस प्रकार है—

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशबहुच्युतो धिषणाया उपस्थात्।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम्॥
ऋ० १०-१७-१२

पदच्छेद—यः, ते, द्रप्सः, स्कन्दति, यः, ते, अंशु, बाहुच्युतः, धिषणायाः, उपस्थात्।

अध्वर्योः, वा, परि, वा, यः, पवित्रात्, तम्, ते जुहोमि, मनसा, वषट्, कृतम्।

अन्वयार्थ—(यः द्रप्सः ते स्कन्दति यः ते अंशुः बाहुच्युतः धिषणाया उपस्थात्। यः परि वा अध्वर्यवः पवित्रात् तं ते यः वषट्कृतम् मनसा जुहोमि।)

जो तेरी बूंदें गिरती हैं, जो तेरे अंश उद्गम स्थान से बाहों से निकले हुए फैलते हैं, जो दूर ऊपर यज्ञ करने वाले पवित्र से, (इन्द्र से) गिरती है। उनको तेरी कार्य कुशलता से बने कार्य को मन से हवन करता हूं (अर्पण करता हूँ)।

इस मन्त्र में कहा है परि वा अध्वर्यः। इसका अर्थ है दूर ऊपर यज्ञ करने वाला। इसका अभिप्राय है इन्द्र जो रचना यज्ञ कर रहा है। उसकी बाहों में से निकल कर गिरी बूंदों का अभिप्राय है सोम के टुकड़े जो उसके द्वारा बनाये हुए गिरते हैं, वे वाणी के स्थान से गिरते हैं और रचना-कार्य में प्रयुक्त होते हैं।

मन्त्र में एक पद 'वषट्कृतम्' भी है। इसका अर्थ है कुशलता से किये गये कर्म। अभिप्राय है उससे बनी वस्तुओं का हम अर्पण करते हैं।

वाणी का स्थान है आपः (ऋ० १-१६३-४) वस्तुतः इन्द्र।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत॥ ऋ० १०-१७-१४

पदच्छेद—पयस्वतीः, ओषधयः पयस्वत्, मामकम्, वचः।
अपाम्, पयस्वत्, तत्, पयः, तेन, मा, सह, शुन्धत॥

अन्वयार्थ—(ओषधयः पयस्वी मामकं वचः पयस्वत्। अपां पयः पयस्वत् तेन सह मा शुन्धतः इत्।)

ओषधियां (वनस्पतियां) पयवाली (पीने का सामर्थ्य रखने वाली) हैं। मेरा **वचन पेय वाला है। मैं कहता हूँ कि मैं उनको ग्रहण कर सकूं।**

पिया हुआ आपः पिया हुआ हो गया। उससे मुझको शुद्ध करो।

पिये हुए का अर्थ है आत्मसात् किया हुआ। पी जाने वाली वस्तु आपः है। मेरी वाणी का अभिप्राय है कहने वाले ऋषि की वाणी। यह कहता है कि वनस्पतियों में आपः ग्रहण किये जाते हैं और उनके पिये जाने से वनस्पतियाँ पवित्र अर्थात् उपयोगी हो गई हैं।

हमने इस सूक्त के पाँच मन्त्र उद्धृत किये हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि आपः विशेष रूप में वनस्पतियों में ग्रहण किये जाते हैं। इससे वनस्पतियाँ उपकारी हो जाती हैं।

अभी तक हम अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध करने का यत्न करते रहे हैं कि सोम आपः हैं। आपः परमाणुओं के निबन्धन अर्थात् संयोग को कहते हैं। आपः केवल तीन ही प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिन पर धन विद्युत् का आवेश होता है। दूसरे वे होते हैं जिन पर ऋण विद्युत् का आवेश होता है। और तीसरे वे होते हैं जिन पर कोई आवेश होता ही नहीं।

सोम आवेश रहित होते हैं। ये तीसरी प्रकार के आपः अर्थात् आवेशरहित आपः ही सोम हैं।

सोम आपः स्वयं निष्क्रिय होते हैं, परन्तु जब ये पदार्थों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं तो जगत् के पदार्थों में विशेष गुण उत्पन्न कर देते हैं।

पंचम अध्याय

जगत् की रचना में सोम के भाग को समझने के लिए यह आवश्यक है कि जगत् के पदार्थों के गुणों को समझ लिया जाय।

सांख्य दर्शन में जगत् के पदार्थों के पच्चीस गणों का वर्णन है, जो इस प्रकार हैं—

सत्त्व रजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृत्तेर्महान् महतोऽहका-रोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यो स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः। सांख्य० १-६१

अर्थात् : सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है। जब तक ये सत्त्व, रजस् और तमस् साम्यावस्था में रहते हैं, तब तक जगत् के पदार्थ नहीं बनते। इस कारण जगत् का मूल कारण होते हुए भी कार्य जगत् का भाग नहीं हैं। यही कारण है कि यह जगत् के गणों में नहीं है।

जगत् के सब पदार्थों की गणना उपरि वर्णित पच्चीस गणों के अन्तर्गत आ जाती है।

इसमें कहा गया है कि प्रकृति से महान् बनता है। अतः कार्य जगत् महान् से ही आरम्भ होता है।

पच्चीस गणों की गणना इस प्रकार है—

प्रथम गण महान् है। यह एक ही है .... १ गण
महान् से आपः अर्थात् अहंकार। ये तीन हैं .... ३ गण
तन्मात्रा। ये पाँच प्रकार की हैं। अतः .... ५ गण
इन्द्रियां (५ कर्मेन्द्रियाँ और ५ ज्ञानेन्द्रियाँ) .... १० गण
स्थूल महाभूत। ये पाँच हैं। .... ५ गण
पुरुष जीवात्मा (शरीर में) .... १ गण

कुल योग : २५ गण

महत् के उपरान्त अहंकार अर्थात् आपः। इन आपः में ही एक सोम है। आपः के उपरान्त बनने वाले तन्मात्रा और इन्द्रियों में तो केवल दो आपः ही कार्य करते हैं। मित्र और वरुण। इन पन्द्रह गणों में सोम का सहाय नहीं है। सोम का सहाय पंच महाभूतों में ही हैं।

ये पंच महाभूत परिमण्डलों के संयोग से बनते हैं और हमने बताया है कि प्रत्येक परिमण्डल में तीनों प्रकार के आपः संयुक्त होते हैं। इनके संयुक्त होने का वर्णन वेद के एक मन्त्र में किया गया है। आधुनिक विज्ञान में परिमण्डल को ऐटम कहते हैं। ऐटम के बनने की प्रक्रिया निम्न उल्लिखित मन्त्रों में दी गई है। इनसे परिमण्डल में सोम के निर्माण कार्य का भी ज्ञान हो जायेगा।

ऋग्वेद प्रथम मण्डल का ३२वां सूक्त इसी विषय पर है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥

पदच्छेद—इन्द्रस्य, नु, वीर्याणि, प्र वोचम्, यानि, चकार, प्रथमानि, वज्री, अहन्, अहिम् अनु, अपः, ततर्द, प्र, वक्षणाः, अभिनत् पर्वतानाम्॥

अन्वयार्थ—(वज्री इन्द्रस्य प्रथमानि वीर्याणि अहिम् अहन् यानि चकार प्रवोचम्। अनुः अपः ततर्द पर्वतानां प्र वक्षणाः अभिनत्।)

वज्रधारी इन्द्र के शौर्य के प्रथम कार्य को कहता हूँ। अहि को नष्ट किया। निम्न कोटि के आपः सोमों को बहा दिया। गांठों के पहलुओं को भलीभाँति तोड़ फोड़ दिया।

इन्द्र को वज्रधारी कहा है। वह इस कारण कि यह पदार्थों को तोड़-फोड़ करता है। इन्द्र अपना यह कार्य मित्र आपः (इलेक्ट्रॉन) से करता है। इस कारण इन्द्र का वज्र मित्र आपः है।

इस मंत्र की प्रथम पंक्ति में अहि शब्द आया है। अहि का शाब्दिक अर्थ सर्प होता है। किन्तु यहाँ साँप की कुण्डली की भाँति (घेरे से) इसका अभिप्राय है। यहाँ यह बताने का यत्न किया गया है कि अनु आपः अर्थात् निम्न कोटि के आपः को वरुण आपः ऐसे घेरे में ले लेते हैं जैसे साँप अपनी कुण्डली में किसी चूहे इत्यादि को ले लेता है।

इन्द्र इस कुण्डली (घेरे) को अपने वज्र से तोड़ देता है, यही अहि को मारने का अभिप्राय है।

इस मन्त्र में एक स्थान पर पर्वत शब्द भी आया है। पर्वत का अर्थ गाँठ भी होता है। यहां कुण्डली की गाँठ से अभिप्राय है। इस गाँठ के एक पहलू से प्रहार किया जाता है और गाँठ टूट जाती है। तब निम्न कोटि के आपः अर्थात् सोम बह निकलते हैं। सोमों के बड़े-बड़े खण्ड बहते हैं तो बूंदों की भाँति अन्तरिक्ष में गिरते से प्रतीत होते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणां त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः ॥

ऋ० १·३२-२

पदच्छेद—अहन्, अहिम्, पर्वते, शिश्रियाणाम्, त्वष्टा, अस्मै, वज्रम्, स्वर्यम्, ततक्ष। वाश्रा, इव, धेनवः, स्पन्दमानाः, अञ्जः, समुद्रम्, अव, जग्मुः, आपः ॥

अन्वयार्थ—(पर्वते शिश्रियाणं अहिम् अहन् त्वष्टा अस्मै स्वर्य वज्रम् ततक्ष। स्पन्दमाना आपः समुद्रं अञ्जः अव जग्मु वात्रा इव धेनवः ॥)

गाँठ में आश्रय लिये हुए अहि (घेरे) को तोड़ दिया। त्वष्टा (परमात्मा) ने इन्द्र के लिए बहुत अच्छा वज्र बनाया है। बहते हुए आपः अन्तरिक्ष में ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे बछड़े के लिए शब्द करती हुई गाय अपने बाड़े में चली आती है।

इस मन्त्र में आये शब्द स्यन्दमानाः का अभिप्राय है कि वज्र से तोड़े-फोड़े निबन्धनों के टुकड़े उड़ते हुए अन्तरिक्ष में दिखाई देते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥

ऋ० १-३२-३

पदच्छेद—वृषायमाणः, अवृणीत, सोमम्, त्रि कद्रुकेषु, अपिनत्, मुतस्य। आ, सायकम्, मघ वा, अदत्त, वज्रम्, अहम्, अनेन, प्रथमजाम्, अहीनाम्।

अन्वयार्थ—(वृषायमाणः सोमं अवृणीत सुतस्य त्रिकद्रुकेषु अपिबत्।
मघवा सायकं वज्र आ अदत्त।
एनम् प्रथम जाम् अहीनाम् अहन्।)

पुष्ट (इन्द्र) ने सोम को वरा। सुतों के तीन प्रकार के व्यवहार का पान किया (स्वीकार किया)।

इन्द्र ने शक्तिशाली वज्र को लिया। इन पहले पैदा हुई कुण्डलियों को (निबन्धनों की गाँठों को) नष्ट कर दिया।

इस मन्त्र में कहा गया है कि निर्मित पदार्थों ने तीन प्रकार के व्यवहारों को स्वीकार किया। यहाँ तीन प्रकार के व्यवहारों से अभिप्राय है त्रिगुणात्मक व्यवहार।

इन्द्र की शक्ति, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, तीन प्रकार की है। सत्त्व, रजस्, तमस्। जबतक यह परमाणु के भीतर संतुलित अवस्था में रहती है तब तक रचना कार्य नहीं हो सकता। परन्तु अनादि अग्नि से यह त्रिगुणात्मक

शक्ति बहिर्मुख हो जाती है। उस बहिर्मुख हुई शक्ति से पदार्थ बनते हैं। और उनके प्रधान गुण उस त्रिगुणात्मक शक्ति से ही प्रकट होते हैं। यही निर्मित पदार्थों के तीन प्रकार के व्यवहार हैं, जिनका कि वर्णन इस वेदमन्त्र में किया गया है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिना: प्रोत मायाः।
आत्सूर्य्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किलाऽविवित्से ॥
ऋ० १-३२-४

पदच्छेद—यत्, इन्द्र, अहन्, प्रथम, जाम्, अहीनाम्, आत्, मायिनाम् अमिनाः, प्र, उत, मायाः, आत्, सूर्यम्, जनयन्, द्याम्, उषसम् तादीत्ना, शत्रुम्, न, किल, विवित्से।

अन्वयार्थ—(इन्द्र यत् अहीनाम् प्रथमजाम् अहन् आत् मायिनाम् मायाः प्र अमिना। आत् सूर्यम् द्याम् उषसं जनयन् तादीत्ना शत्रुं न विवित्से किल।)

और हे इन्द्र! कुण्डलियों के प्रथम उत्पन्न हुए पर जब तुम प्रहार करते हो और तुम रचितों की रचना को भली प्रकार नष्ट कर देते हो;

उस समय सूर्य को, द्युलोक को, उषा को उत्पन्न करते हो। तदनन्तर शत्रु को तुमने नहीं पाया। (अर्थात् विरोध समाप्त हो चुका था और विरोध करने वाला नहीं रहा था।)

जब इन्द्र सोम-निबन्धनों के बड़े-बड़े संयोगों को नष्ट कर रहा था, तब उस समय सूर्य, द्युलोक और ऊषा का प्रकाश उत्पन्न हुआ था। शत्रु का अभिप्राय वरुण से है। यह इस कारण कि वरुण का इन्द्र के वज्र मित्र से विपरीत आवेश होता है। मित्र पर ऋण आवेश होता है और वरुण पर धन आवेश होता है।

इस मन्त्र से यह भी प्रकट होता है कि पहले सूर्य का पिण्ड पृथिवी की भाँति प्रकाशहीन था। बाद में वरुण और मित्र के संघर्ष में वह प्रकाशित हुआ। इस प्रकार प्रकाशित होने के उपरान्त इस पर प्रकाश और ऊष्मा किस प्रकार निरन्तर स्थित रही है उसका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है। यह इन्द्र और आदि अग्नि का विषय है। सोम के मन्त्रों में उसका वर्णन नहीं किया गया।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥
ऋ० १-३२-५

पदच्छेद—अहन्, वृत्रम्, वृत्रतरम्, वि-अंसम्, इन्द्र, वज्रेण, महता, वधेन। स्कन्धांसि-इव, कुलिशेन वि-वृक्णा, अहिः, शयते, उप-पृक्, पथिव्याः।

अन्वयार्थ—(इन्द्रः वृत्रं वृत्रतरं महता बधेन वज्रेण व्यंसम् अहन् । अहिः कुलिशेन स्कन्धांसि इव विवृक्णा पृथिव्याः उप-पृक् शयते ।)

इन्द्र वृत्रों और वृत्रों से भी परे वालों पर अपने महान् वज्र से प्रहार करता है और उनको नष्ट कर देता है। शरीर के अवयवों की भाँति तेज शस्त्र से टुकड़े टुकड़े हुआ वह पृथिवी पर लेट जाता है।

'वृत्र' के शाब्दिक अर्थ हैं 'छाजन' अर्थात् ढंकने वाला। धन और ऋण शक्तियों के संघर्ष में जब मित्र और वृत्र में परस्पर एक-दूसरे को आवेश रहित करने की प्रक्रिया चल रही होती है, तब सोम जो आवेश-रहित होते हैं वे वृत्रों के नीचे ऐसे छिप जाया करते हैं कि जिस प्रकार बछड़ा गाय के नीचे छिप जाया करता है।

इस मन्त्र में एक शब्द आया है 'वृत्रों से भी परे'। इसका अभिप्राय यह है कि वृत्रों के नीचे छिपे हुए सोमों पर भी वह प्रहार करता है। दोनों के बड़े-बड़े निबन्धन कटे शरीर की भाँति पृथिवी पर (किसी स्थिर स्थान पर) जा पड़ते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं बधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥

ऋ० १-३२-६

पदच्छेद—अयोद्धा-इव, दुर्मदः, आ, हि, जुह्वे, महावीरम्, तुविबाधम्, ऋजीषम्।

न, अतारीत्, अस्य, सम्-ऋतिम्, बधानाम्, सम्, रुजानाः, पिपिषे, इन्द्र-शत्रुः।

अन्वयार्थ—(दुर्मदः अयोद्धा इव हि महावीरम् तुविबाधम् ऋजीषम् आ जुह्वे। अस्य वधानां न अतारीत इन्द्र शत्रुः समृतिं रुजानाः संपिपिषे।)

मदमस्त (तमोभूत) न लड़ने वाले की भाँति निश्चय से लड़ने वालों की ओर से महावीर (इन्द्र) को आह्वान करता है। इन संहार हुओं का पार न पा सकने पर इन्द्र का शत्रु (वृत्र) संहार हुओं में मिल गया।

इस मन्त्र में इन्द्र के वज्र और वरुण तथा सोम आपः में हुए संघर्ष का आलंकारिक वर्णन किया गया है। सोम जो शक्तिविहीन है, वह अपनी रक्षा करने वालों को उत्साहित करने के लिए इन्द्र को ललकारता है। परन्तु विजय बलवान की ही होती है।

यह सब अलंकारिक रूप में ही है। वस्तुस्थिति यह है कि प्राकृतिक शक्तियों का टकराव होता है और उसके परिणामस्वरूप इन्द्र के वज्र अर्थात् मित्र आपः के समक्ष वृत्र और सोम आपः निस्तेज (अशक्त) हो जाते हैं।

वृत्र अर्थात् धन विद्युत आवेश वाले कण भी आवेश रहित कणों के साथ एक ढेर में हो जाते हैं। एक साथ लेट जाने का यही अभिप्राय है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो बध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः॥
ऋ० १-३२-७

पदच्छेद—अपात्, अहस्तः, अपृतन्यत्, इन्द्रम्, आ, अस्य, वज्रम्, अधि, सानौ, जघान।
वृष्णः, बध्रिः, प्रतिमानम्, बुभूषन्, पुरुत्रा, वृत्रः, अशयत्, वि अस्तः॥

अन्वयार्थ—(अपात् अहस्तः इन्द्रिम् अपृतन्यत्, अस्य सानौ अधिवज्रम् आजघान। वध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् वृत्रा पुरुत्रा विअस्तः अशयत्।)

विना हाथ-पाँव वाले सोम आपः इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारते हैं। इसका (इन्द्र का) वज्र चारों ओर से प्रहार करता है। पुरुषत्वहीन (आवेश रहित) शक्तिशाली (इन्द्र) की नकल उतारने की इच्छा करते हुए विशेष स्थानों पर आकर लेट जाते हैं।

आवेशयुक्त कणों और आवेशरहित कणों में हुए विरोध [illegible] लंकारिक वर्णन किया गया है।

इस सूक्त के अगले मन्त्र का भी कुछ ऐसा ही भाव है। मन्त्र है—

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव॥
ऋ० १-३२-८

पदच्छेद—नदम्, न, भि[illegible]न्, अमुया, शयानम्, मनः, रुहाणः, अति, यन्ति, आपः।
याः, चित्, वृत्रः, महिना, परि-अतिष्ठत्, तासाम्, अहिः, पत्सुतः, शीः, बभूव।

अन्वयार्थ—(अमुया शयानं आपः मनः रुहाणाः यन्ति अति भिन्नं नदं न। याः चित् वृत्रः महिना परि-अतिष्ठत अहिः तासाम् पत्सुतः शीः बभूव।

सोये हुए आपः मन (अति वेग) से उठने वाले अतिक्रमण कर जाते हैं। टूटी किनारों वाली नदी की भाँति (जैसे टूटे किनारों वाली नदी का जल अनिश्चित दिशाओं में बहता है वैसे ही सोम आपः धाराओं में बहने लगते हैं।) और जिनको वृत्र अपनी महिमा से, वरुण आपः अपनी महिमा से घेरे हुए ठहरे हुए थे, वे उनके पाँव में सो जाते हैं।

इन्द्र के वज्र (मित्र आपः) और वृत्र (वरुण) में एक विशेष स्थिति उत्पन्न हो रही है, उसका यहाँ वर्णन किया गया है। वह स्थिति है वरुण आपः आवेश-रहित आपः (सोमों) के चारों ओर ढेर हो रहे हैं। मानो वृत्र सोमों की रक्षा कर रहे हैं।

वास्तव में, मित्र और वरुण परस्पर टकराने से आवेशरहित हो रहे हैं। परन्तु मित्र संख्या में अधिक होने से बहुत से आवेशयुक्त बने रहते हैं और वरुण संख्या में कम होने से सोमों की भाँति शिथिल हो जाते हैं।

वर्तमान विज्ञान भी यह मानता है कि इलेक्ट्रोनों के बादल-सा प्रोटोन और न्युट्रोनों को घेरे रहता है।

यह स्थिति कुछ ऐसी बन जाती है कि जैसी वर्तमान विज्ञान में ऐटम की मानी जाती है। उदाहरणार्थ निम्न अंकित चित्र देखिये—
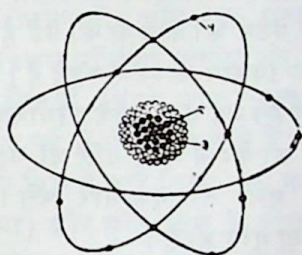
इस सूक्त के अगले मन्त्र में इस चित्र का वर्णन किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है -

> नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव बधर्जभार।
> उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥
> ऋ० १-३२-९

पदच्छेद—नीचा वयाः, अभवद्, वृत्रपुत्रा, इन्द्र, अस्याः, अव, बधः, जभार। उत्तरा, सूः अधरः, पुत्रः आसीत्, दानु, शये, सहवत्सा, न धेनुः॥

अन्वयार्थ – (वृत्रपुत्रा नीचा वया अभवत् इन्द्र, अस्याः अव बधः जभार। उत्तरा सूः अधरः पुत्रः आसीत्। दानुः शये सहवत्सा न धेनुः।)

वृत्र है पुत्र जिसका, (कुण्डली) गति वाली हो गई। इन्द्र उसके नीचे से प्रहार करने लगा। ऊपर माता (वृत्रों का छाजन) नीचे पुत्र (सोम आपः) पुत्र के साथ सोई हुई थी। जैसे गाय बछड़े के साथ सोयी होती है।

तीनों आपः की स्थिति जो ऊपर के मन्त्र तथा चित्र में दिखाई है, यह उसका ही वर्णन है।

सूक्त के अगले मन्त्र में इसको और भी स्पष्ट कर दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

> अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
> वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥
> ऋ० १-३२-१०

पदच्छेद–अतिष्ठन्तीनाम्, अनि-वेशनानाम्, काष्ठानाम्, मध्ये, निहितम्, शरीरम्।
वृत्रस्य, निण्यम्, वि, चरन्ति, आपः, दीर्घम्, तमः, आ, अशयत्, इन्द्र-शत्रुः॥

अन्वयार्थ –(अतिष्ठन्तीनाम् अनिवेशनानाम् काष्ठानाम् मध्ये शरीरम् निहितम्। इन्द्रशत्रुः वृत्रस्य निण्यं आपः विचरन्ति दीर्घम् तमः अशयत्।)

अनिश्चित गतियों और स्थानों पर चलते हुए सीमावर्ती आपः के मध्य में शरीर (मुख्य भाग) स्थिर है। इन्द्र शत्रु (इन्द्र के वज्र से विरोधी आवेश रखने वाला) वृत्र के अधीन आपः घोर अन्धकार में रहते हुए, लेटे हुए हैं।

यदि इस मन्त्र में वर्णित स्थिति की ऊपर के चित्र से तुलना करें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। इस चित्र में एक ऐटम की कल्पना की गई है। इस मन्त्र में उसका ही वर्णन है। इसको आधुनिक विज्ञान में ऐटम कहते हैं। वैशेषिक दर्शन में इसको परिमण्डल का नाम दिया गया है। यह नाम इसके सीमावर्ती आपः की परिमण्डलीय गति के कारण है। इस गति को वेद में ऋजु गति भी कहते हैं। ऋजु गति का अर्थ है सामान्य गति। वह गति जो एक-सार चले। यह परिमण्डलीय गति अन्तरिक्ष के पदार्थों में सामान्य गति ही है।

इस सूक्त में परिमण्डल बनने की प्रक्रिया का ही वर्णन किया गया है।

परमात्मा की शक्ति के (अश्वाग्नि) के सजग होने पर सृष्टि की रचना हुई। इसे पहले 'आनीत अवातम्' कहा गया है। सजग होने पर यह आकाश में फैल गई। परमाणुओं पर यह लगाम की भाँति आरूढ़ हो गई। पहले परमाणुओं पर इन्द्र अधिष्ठित था। इन्द्र बहिर्मुख हो गया। यह तीन प्रकार की शक्तियाँ अर्थात् सत्व, रजस, तमस का संयोग था। यह शक्तियाँ पहले तो परमाणु के भीतर सन्तुलित अवस्था में थीं। किन्तु जब बहिर्मुख हुईं तो समीपस्थ परमाणुओं को आकर्षित करने लगीं। इससे परमाणुओं के निबन्धन बन गये। तीन प्रकार के निबन्धन बने। एक तो वे जिन पर शेष आवेश ऋण था, दूसरे वे जिन पर शेष आवेश धन था और तीसरे वे जिन पर किसी प्रकार का आवेश नहीं था।

ये निबन्धन आपः कहे जाते हैं। ये हैं मित्र (इलैक्ट्रोन), वरुण (प्रोटोन) और अर्यमा अथवा सोम (न्युट्रोन)। आधुनिक विज्ञान में इनको ऐटोमिक पार्टिकल्स कहा जाता है।

इन तीन प्रकार के कणों से ऊपर के सूक्त में वर्णित इकाई बनती है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिसको परिमण्डल कहा जाता है और आधुनिक विज्ञान में जिस को एटम कहते हैं। इन ऐटम की इकाइयों से ही जगत् के सब पदार्थ बनते हैं। ऐसा ऋ० १-१६३-४ में भी कहा गया है। आधुनिक विज्ञान भी ऐसा ही मानता है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार अभी तक प्रकृति में लगभग १०४ प्रकार के परिमण्डल ही पाये गये हैं। परन्तु इन परिमण्डलों के कुछ ऐसे रूप भी बनते हैं जो भार में समान नहीं होते, यद्यपि गुणों में वे समान होते हैं। ऐसे ऐटम को वर्तमान विज्ञान 'आइसोटोप' कहता है।

वेद में इन आइसोटोप्स के बनने का भी संकेत है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र है—

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार॥
ऋ० १-३२-११

पदच्छेद—दास-पत्नीः, अहि-गोपाः, अतिष्ठन्, निरुद्धाः, आपः, पणिना इव, गावः।
अपाम्, बिलम्, अपिहितम्, यत्, आसीत्, वृत्रम्, जघन्वान्, अप, तद्, ववार॥

अन्वयार्थ –(दासपत्नीः अहिगोपा आपः निरुद्धाः अतिष्ठन् पणिना इव गावः। यत् अपां बिलम् अपिहितं आसीत् तत् वृत्रं जघन्वान् अप तत् ववार।)

दास है पति जिनका (वरुण आपः) कुण्डली का सा घेरा जिनकी रक्षा करते हैं, वे आपः ऐसे रुके पड़े हैं जैसे गौ रक्षकों के घेरे में ठहरी होती है।

जब आपः को बिल में बन्द किया हुआ था, तब, इन्द्र ने वृत्र को नष्ट किया (आवेशरहित किया) और सोम बिल के भीतर से (बाहर वह) निकले।

प्रकृति में भी यह प्रक्रिया कहीं-कहीं हो रही है और इसे आज के वैज्ञानिक कृत्रिम रूप से भी सम्पन्न करने लगे हैं।

सोम आपः ही परिमण्डल के भार में मुख्य कारण होते हैं। उनके बाहर बह निकलन से परिमण्डल कम भार वाले बन जाते हैं। परिमण्डल के गुण तो मित्र (इलेक्ट्रोन) अथवा वरुण (प्रोट्रोन) के कारण होते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न भार वाले, परन्तु समान रासायनिक गुणों वाले परिमण्डल बन जाते हैं। ऐसे परिमण्डलों को आइसोटोप कहते हैं।

प्रकृति में वरुण और सोम आपः बड़े-बड़े बनते दिखाई देते हैं परन्तु इनको जगत् के पदार्थों के योग्य बनाने के लिए इन्द्र अपने मित्र आपः से काम लेता है। इसी कारण मित्र आपः को इन्द्र का वज्र कहा है।

अब तक हमने यह बताया है कि 'सोम' शब्द, तीन आपः में से एक के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त 'सोम' शब्द का प्रयोग वनस्पति तथा उसके पत्तों और स्वरस के लिए भी होता दिखाई देता है।

सोम पान का उल्लेख तो है किन्तु वह पान इन्द्रादि प्राकृतिक शक्तियों के लिए है। अथवा पृथिवी पर सोम का पिया जाना ओषधियों तथा वनस्पतियों के लिए ही पाया गया है। पान को हमने ग्रहण करने, आत्मसात् करने के अर्थ में स्वीकार किया है। आत्मसात् करना अर्थात् भीतर लेना या अपना अंग बना लेना।

हमने यह भी बताया है कि किस प्रकार इन्द्र सोम का पान करता है। उसके बाद अपने तीनों अंशों को एकत्रित कर एक इकाई बना लेता है। उस इकाई को परिमण्डल (ऐटम) कहते हैं। अतएव पान करने का अभिप्राय एक तो वह है जो सामान्य भाषा में ग्रहण किया जाता है। परन्तु प्राकृतिक पदार्थों द्वारा पिये जाने का अभिप्राय पदार्थ को अपने भीतर लेना और उसे अपना अंग बना लेना ही कहा जा सकता है।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय में हम सोम के सक्रिय होकर जगत् की रचना में भाग लेने के विषय पर लिखना चाहते हैं। सोम में यह क्षमता कैसे आती है, इसका वर्णन वेद में है। वहां यह बताया है कि आवेश-रहित (शक्ति-विहीन) परमाणुओं का संयोग किस रचना-कार्य में किस प्रकार भाग लेता है।

इस सम्बन्ध में वेद में एक सूक्त है, जिसका देवता अर्थात् विषय है 'अग्नि सोमो' अर्थात् अग्नि और सोम। इसमें दोनों के संयुक्त प्रयास के विषय में कहा गया है।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र निम्नोद्धृत है—

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम्।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः॥

—ऋ० १-९३-१

पदच्छेद—अग्नीषोमौ, इमम्, सु, मे, शृणुतम्, वृषणा, हवम्।
प्रति, सु-उक्तानि, हर्यतम्, भवतम् दाशुषे, मयः॥

अन्वयार्थ—(वृषणा अग्नीषोमौ इमम् मे हवम् सु शृणुतम्। सूक्तानि प्रति हर्यतं दाशुषे मयः भवतम्।)

हे कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि और सोम। मेरी इस पुकार को भली प्रकार सुनो।

मन्त्रों की कामना करो। देने वाले के लिये कल्याणकारी होओ (यह अग्नि और सोम दोनों से कामना की गई है)।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब अग्नि और सोम मिल जाते हैं तो ये कामनाओं (प्राणियों की आवश्यकताओं को) पूर्ण करते हैं। इनका ऐसा करना प्राणियों के कल्याण के लिये है।

यह किस प्रकार सम्भव होगा? इस प्रश्न का उत्तर अगले मन्त्रों में उपलब्ध है। उनमें अग्नि और सोम के संयोग के गुण, कर्म और उपयोग का वर्णन किया गया है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम्॥

—ऋ० १-९३-२

पदच्छेद—अग्नीषोमा, यः अद्य, वाम्, इदम्, वचः, सपर्यति। तस्मै, धत्तम्,
सुवीर्यम्, गवाम्, पोषम्, सु-अश्व्यम् ।।

अन्वयार्थ –(अग्नीषोमा यः अद्य वां इदम्, वचः, सपर्यति। तस्मै गवां पोषं सुवीर्यम् स्वश्व्यम्।)

हे अग्नि और सोम ! जो अब तुमको यह वचन करता है (कहता है) उसके लिए रश्मियों से पुष्ट श्रेष्ठ बल और शक्ति को दो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि अब परमात्मा की अनादि शक्ति अग्नि सोम से संयुक्त होती है, तो सोम पुष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि में समिधा डालने से अग्नि तीव्र होती है, उसी प्रकार अनादि अग्नि सोमों के संयोग से बलवान हो जाती है। तब फिर अग्नि वेग से कार्य करने लगती है।

सोम प्रकृति के परमाणुओं का निबन्धन है। परमाणु अग्नि का अन्न बन जाते हैं और अन्न की ही भाँति अग्नि को पुष्ट करते हैं।

इस सूक्त का अगला मन्त्र है --

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।।

—ऋ० १-९३-३

पदच्छेद—अग्नीषोमा, यः आहुतिम्, यः, वाम्, दाशात् हविः-कृतिम् ।
स, प्रजया, सुवीर्यम्, विश्वम्, आयुः, वि, अश्नवत् ।।

अन्वयार्थ (अग्नीषोमा यः आहुतिं वां दाशात् हविष्कृतिम् यः । स प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्नवत् ।)

हे अग्नि और सोम ! जो आहुति तुमको खाने को देता हूँ वह प्रजा (उत्पन्न पदार्थों) के साथ बल और सम्पूर्ण आयु को विशेषता से प्राप्त करे।

इस मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि और सोम के संयोग से जो हवि, अन्नादि पदार्थ, प्राप्त होते हैं वे बल और दीर्घायु प्राप्त करायें।

अगला मन्त्र है --

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविंदतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ।।

— ऋ० १-९३-४

पदच्छेद—अग्नीषोमा, चेति, तत् वीर्यम्, वाम्, यत्, अमुष्णीतम्, अवसम्,
पणिम्, गाः ।
अव, अतिरतम्, बृसयस्य, शेषः, अविन्दन्तम्, ज्योतिः, एकम्,
बहुभ्यः ।।

अन्वयार्थ –(अग्नीषोमा वां तत्वीर्यं चेति यद् वाम् अवसम् पणिं अमुष्णीतं बृसयस्य शेषः अवातिरतं ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतम् ।)

—

हे अग्नि और सोम ! तुम्हारा वह बल जाना है । जिससे (तुम) रश्मियों को बल वाले रक्षक से छीन लेते हो। चेतन किये जाने वाले का शेष, जो अभी उल्लंघन नहीं हुआ कि ज्योति वहुत (संख्या में) हो जाती है।

जब अग्नि और सोम का संयोग होता है तो उसमें से रश्मियाँ उत्पन्न होती हैं और वह एक ज्योति वहुत संख्या में वंट जाती है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चत् गृभीतान् ।।
—ऋ० १-९३-५

पदच्छेद—युवम्, एतानि, दिवि, रोचनानि, अग्निः, च, सोम, सक्रतू अधत्तम् । युवम्, सिन्धून्ः, अभिशस्ते, अवद्यात्, अग्निषोमौ, अमुन्चतम्, गृभीतान् ।।

अन्वयार्थ—सोम अग्निः च सक्रतू युवं रोचनानि एतानि दिवि अधत्तम् । अग्नि सोमौ सिन्धून युवम् अभिशस्तेः अवद्यात् अमुन्चतम् ।

सोम और अग्नि साथ-साथ कार्य करते हुए इस आकाश में चमकते हुए पदार्थों को धारण करो। हे अग्नि और सोम ! तुम ग्रहण की हुई धाराओं को हीन अवस्था से विमुक्त करते हो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब अग्नि और सोम संयुक्त हो जाते हैं तो उनके प्रयत्न से जो नियन्त्रण हीन हैं और हीन अवस्था में हैं वे मुक्त हो जाते हैं, अर्थात् सोम आपः विमुक्त हो जाते हैं।

प्रकाश की धारायें बह रही हैं। उन धाराओं में अनियन्त्रित सोम हीन अवस्था में बह रहे हैं। उस हीनावस्था से उनको मुक्त कराया जा रहा है। वह मुक्त करने वाला है अग्नि और सोम का संयुक्त प्रयास।

सायणानुसार तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि इन्द्र को निन्दनीय अवस्था से अग्नि और सोम ने विमुक्त किया। यह कहा गया है कि इन्द्र ने वृत्र ब्राह्मण की हत्या करके घोर पाप किया था और वह नदियों में डूबा जा रहा था। अग्नि और सोम ने उसको बचाया।

यह आलंकारिक वर्णन होते हुए भी सर्वथा अशुद्ध है। वृत्र ब्राह्मण पद पर नहीं होते। ये तो प्रकृति का एक परिणाम हैं। साथ ही इन्द्र ने वृत्र के बड़े-बड़े गुच्छों को तोड़ा था। इन्द्र ने वृत्र अर्थात् वरुण आपः की हत्या नहीं की थी। ऋ० १-३२ में इन्द्र के इस कार्य की प्रशंसा की गई है। इसका कारण यह है कि इन्द्र के इस कार्य से कार्य-जगत् की रचना हुई थी। इन्द्र के इस कार्य से परिमण्डल (ऐटम) की रचना का होना बताया गया है जिससे जगत् के सब पदार्थ बने हैं। यह कार्य किसी प्रकार भी निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। अतः हमारी दृष्टि में ब्राह्मण ग्रन्थ की यह कल्पना और सायण द्वारा उसका स्वीकार किया जाना अशुद्ध है।

अविद्यात् का अर्थ है हीन अवस्था। सोम हीन अवस्था में थे। सोम के कण प्रकाश की धाराओं में बहे जा रहे थे। अग्नि और सोम के संयुक्त प्रयास से उस निन्दनीय अवस्था से निकाले गये। यह वेद का कथन है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम्॥

ऋ० १-९३-६

पदच्छेद - आ, अन्यम्, दिवः मातरिश्वा, जभार, अमथ्नात्, अन्यम्, परिश्येनः, अद्रेः।
अग्नीषोमा, ब्रह्मणा, विवृधाना, उरुम्, यज्ञाय चक्रथुः, उ, लोकम्।

अन्वयार्थ —अन्यं मातरिश्वा श्येनः दिवः आ जभार। अग्निषोमा ब्राह्मणा विवृधाना यज्ञाय उरुं चक्रथु, लोकम्।

दोनों में से एक (अग्नि) मातरिश्वा श्येन को गति वाला द्यु लोक में चारों ओर फैलाता है। और दूसरे (सोम) को पत्थर पर मसल डालता है। (वहुत बारीक टुकड़े-टुकड़े कर डालता है) अग्नि सोम दोनों ही परमात्मा से फैलाये जाते हुए यज्ञ कार्य को विस्तृत करते हैं।

मातरिश्वा उस वायु को कहते हैं जो परमाणुओं के असाम्यावस्था में होने पर आवेशों से आकर्षित विकर्षित होने के कारण गति उत्पन्न करते हैं। वायु गति सूचक ही है। यह मातरिश्वा अग्नि और सोम के संयोग को दूर-दूर तक फैला देता है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः॥

ऋ० १-९३-७

पदच्छेद —अग्निषोमा, हविषः, प्रस्थितस्य, वीतम्, हर्यतम्, वृषणा, जुषेथाम्।
सुशर्माणा, सु-अवसा, हि, भूतम्, अथा, धत्तम्, यजमानाय, शम्, योः॥

अन्वयार्थ —अग्निषोमा प्रस्थितस्य हविषः वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् अथ यजमानाय याः शम्, सुशर्माणा सु अवसा हि भूतम् धत्तम्।

हे अग्निषोम ! प्राप्त की हुई हवि का भोजन करो। कामना पूर्ण करने वाले का सेवन करो। और यजमान के लिये (मनुष्य के लिये) सुख और बल का देने वाला है, भय को दूर करता है और शान्ति को देता है, चारों ओर से आकर धारण करो।

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि अग्नि और सोम का संयोग मनुष्य के लिये सुख-शान्ति प्रदायक होता है। उसको निर्भय करता है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

यो अग्निषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
यस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।।

ऋ० १-९३-८

पदच्छेद—यः, अग्निषोमा, हविषा, सपर्याद्, देवद्रीचा, मनसा, यः घृतेन यस्य, व्रतम्, रक्षतम्, पातम्, अंहसः, विशे, जनाय महि, शर्म यच्छतम् ।

अन्वयार्थ—अग्निसोमा यः देवद्रीचा मनसा हविषा घृतेन सपर्यात्। यस्य व्रतम् रक्षतं अंहसः पातं विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।

हे अग्नि और सोम ! जो देवताओं में श्रद्धा रखने वाले मन से हवि देते हैं तथा जो घृत से सेवन करते हैं, उनके कर्म की रक्षा को हानि करने वाले से बचाओ। प्रवेश पाये हुए जनों के लिये सुख प्रदान करो।

देवताओं में श्रद्धा रखने वाले का अभिप्राय है जो देवताओं के निर्माण में रुचि रखते हैं। अर्थात् आपः (सूर्यादि देवताओं के बनाने में ये ही भाग लेते हैं।) उनकी अग्नि और सोम सहायता करते हैं। यहाँ सेवन करें का अभिप्राय है उनके कार्य में सेवा करें।

उनकी अर्थात् आपः की अग्नि और सोम रक्षा करें।

मन्त्र में कहा गया है कि घी से सेवा करें। घी से अभिप्राय उस पदार्थ से है जिससे यज्ञ की अग्नि तीव्र होती है। यहाँ पर इसका अभिप्राय है अमाम्यावस्था में परमाणु। जगत् रचना कार्य में उनकी आवश्यकता होती है और वे ही रचना-कार्य को तीव्र करते हैं।

इस सूक्त का अगला मन्त्र है—

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः ।
सं देवत्रा बभूवथुः ।। ऋ० १-९३-९

पदच्छेद—अग्नीषोमा, सवेदसा, सहूती, वनतम्, गिरः ।
सम् देवत्रा, बभू, वथु ।।

अन्वयार्थ—अग्नीषोमा सवेदसा सहूती गिरः वनतं देवत्राः संबभूवथु ।

हे अग्नि और सोम ! आप समान धन (बल) वाले हमारी स्तुति (गुण कर्म स्वभाव के जानने की) वाणी को स्वीकार करो। दिव्य गुणों वाले भली प्रकार होवो (कार्य करो)।

इस मन्त्र में एक शब्द धन है। धन से अभिप्राय है बल। बल ही धन कहा जाता है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र है—

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति।
तस्मै दीदयतम् बृहत्॥ —ऋ० १-९३-१०

पदच्छेद—अग्नीषोमो, अनेन, वाम्, यः, वाम्, घृतेन, दाशति।
तस्मै, दीदयतम्, बृहत्।

अन्वयार्थ—अग्नी षोमो वां यः अनेन घृतेन वां दाशति। तस्मै दीदयतम् बृहत्।

हे अग्नि और सोम! तुमको जो (इस रचना कार्य में घी) यज्ञ को तीव्र करने वाले द्रव्य, असाम्यावस्था में परमाणुओं से हवि (आहुति) देते हैं। उसके लिए बहुत देते हो।

पहले मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि और सोम आपः की सहायता से रचना कार्य में सहयोग दे रहे हैं। यहाँ कहा है कि उन आपः के लिये तुम उनको बहुत देते हो।

अर्थात् असाम्यावस्था में परमाणु निरन्तर प्रस्तुत करते रहते हो।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्।
आ यातमुप नः स चा॥ —ऋ० १-९३-११

पदच्छेद—अग्नीषोमौ, इमानि, नः, युवम् हव्या, जुजोषतम्।
आ, यातम्, उप नः, सचा।

अन्वयार्थ—अग्नीषोमा युवं नः इमानि हव्या जुजोषतम्। नः सचा उप आ यातम्।

हे अग्नि और सोम। तुमको हमारे इन पदार्थों की हवियाँ स्वीकार हो। साथ-साथ हमारे समीप आओ।

प्राणी के भोजन के लिये सोम वह पदार्थ निर्माण करता है जो शरीर बनाने के काम में आता है। इसलिये अग्नि और सोम से यह कामना की गई है कि वे समीप आये जिससे कि सहज ही प्राणी का शरीर बन सके।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अग्षोनीमापिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम्॥
—ऋ० १-९३-१२

पदच्छेद—अग्नीषोमा, पिपृतम्, अर्वतः, नः, आ, प्यायन्ताम्, उस्रिया, हव्यसूदः।
अस्मै, बलानि, मघवत्सु, धत्तम्, कृणुतम्, नः, अध्वरम्, श्रुष्टिमन्तम्॥

अन्वयार्थ—(नः अर्वतः पिपृतं हव्यसूदः उस्रिया अध्यायन्ताम्, अग्निषोमा।) हे अग्नि और सोम ! हमारे अश्वों की पालना करो। हवियों को लेने वाली गायें वृद्धि वाली होवें (बहुत सन्तान वाली होवें)।

(मघवत्सु अस्मै बलानि धत्त। नः अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतम्) धनवान हम में बल स्थापित करें। हमको, (यज्ञ करने वालों को) धनयुक्त करो।

मन्त्र में अश्व का अभिप्राय यज्ञ अर्थात् सृष्टि रचना में कर्म को खींच कर ले जाने वाला भी हो सकता है और गाओं का अभिप्राय शक्ति की रश्मियाँ भी हो सकता है। परन्तु क्योंकि यह सूक्त का अन्तिम मन्त्र है इस कारण इसमें हमारे विचार में कामना का ही अभिप्राय है।

इस सूक्त में अग्नि और सोम के संयुक्त कार्यों का वर्णन किया है। हम यह बता चुके हैं कि सोम परिमण्डल का निष्क्रिय अंश है। अपने आप यह कुछ भी कर्म नहीं कर सकता। यह जहाँ भी पड़ा होगा वहीं पड़ा रहेगा। वेदानुसार इसका कार्य अग्नि, परमात्मा की शक्ति के सहयोग से होता है। जहां-जहां भी मित्र और वरुण आपः जाते हैं उनके साथ ही यह अग्नि द्वारा उड़ा लिया जा रहा होता है। पृथिवी के भारी, कठोर, पौष्टिक तथा उपादान (मैटेरियल) भाग बनाने के काम में आ जाता है। यह वनस्पतियों में भी जाता है तो उनमें पुष्टिकारक अंग बनाता है।

इसी कारण यह कामना की गई है कि हमारे वाहनों को खींचकर ले जाने वाले संयन्त्र को यह पुष्ट करे। साथ ही यह कामना की गई है कि यह हमारे भोजन के मुख्य अंग गौओं के दूध में आवे।

सप्तम् अध्याय

वेद के एक अन्य सूक्त में भी सोम के विषय में अधिक सामान्य ज्ञान दिया है। ऋग्वेद का वह सूक्त है १-९१, जिसका प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥

—ऋ० १-९१-१

पदच्छेद—त्वम्, सोम, प्र, चिकितः, मनीषम्, त्वम्, रजिष्ठम्, अनु नेषि, पन्थाम्।

तव, प्र-णीती, पितरः, नः, इन्दो, देवेषु, रत्नम्, अभजन्त धीराः।

अन्वयार्थ—सोम त्वं मनीषा प्रचिकितः त्वं रजिष्ठम् पन्थामनु नेषि। इन्दो प्रणीति धीराः न पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त।

हे सोम! तुम मन के सामर्थ्य से भली प्रकार जाने जाते हो। तुम ऋजु मार्गों की ओर ले जाते हो। हे शान्त स्वभाव वाले! तेरे उत्कृष्ट कार्य हमारे पितर और देवताओं से प्रशंसा किये जाते हैं।

यहाँ सोम को शान्त स्वभाव वाला कहा गया है और कहा है कि वह अपने गुणों से जाना जाता है। पितरों से अभिप्राय अमैथुनीय सृष्टि के मनुष्यों से है। वे भी सोम की सहायता की प्रशंसा करते हैं और देवता भी। देवताओं से अभिप्राय है प्राकृतिक पदार्थ जो दिव्य गुण रखते हैं। अभिप्राय यह कि कार्य जगत् में सब श्रेष्ठ पदार्थ सोम की सहायता से बनते हैं। और वे सब इसके प्रशंसनीय कार्य का अनुभव करते हैं।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥

—ऋ० १-९१-२

पदच्छेद—त्वम्, सोम क्रतुभिः, सु-क्रतुः, भूः, त्वम्, दक्षै, सुदक्षः विश्ववेदा त्वम्, वृषा, वृष, त्वेभिः, महित्वा, द्युम्नेभिः, द्युम्नी, अभवः, नृचक्षाः।

अन्वयार्थ—सोम त्वं क्रतुभिः सुक्रतू भूः विश्वेदाः त्वं दक्षे, सुदक्षः। त्वं वृषत्वेभिः महित्वा वृषा। नृचक्षाः द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः॥

हे सोम ! तुम कर्मों द्वारा सुन्दर निर्माण करने वाले बनो। सम्पूर्ण को जानने (करने वाले) तुम कुशलताओं में श्रेष्ठ कुशल वाले बनो। तुम कमनीय पदार्थों से कामनाओं की महान् वर्षा करते हो। कामनाओं को करते हो। मनुष्यों को देखते (रक्षा करते हो) तथा अन्नों के द्वारा अन्न वाले हो।

इस मन्त्र में कहा गया है कि संसार के सुन्दर पदार्थों के निर्माण में सोम का हाथ है। यह अन्न का मुख्य भाग होने के कारण मनुष्यों की रक्षा करता है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम॥

—ऋ० १-९१-३

पदच्छेद—राज्ञः नु ते वरुणस्य, व्रतानि, बृहत्, गभीरम्, तव, सोम, धाम।
शुचि, त्वम्, असि, प्रियः, न, मित्रः, दक्षाय्यः, अर्यमा, इव, असि, सोम।

अन्वयार्थ—सोम राज्ञ ते वरुणस्य नु व्रतानि तव धाम वृहत् गभीरम्। सोम तव शुचिः न असि प्रियो मित्रः अर्यमा इव दक्षाय्यः असि।

हे सोम राज ! तेरे प्रति सोम के कार्यों से तेरा निवास बहुत गहराई में है। हे सोम ! तुम पवित्र हो। मित्र की भाँति हमारे प्रिय हो। अर्यमा की भाँति वृद्धि करने वाले होवो।

सोम के गुणों को देखकर कहा है कि तुम हमको ऐसे ही प्रिय हो जैसे मित्र आपः (अथवा मित्र बन्धु) होता है। अर्यमा के शाब्दिक अर्थ हैं रात का देवता अर्थात् चन्द्रमा। चन्द्रमा जैसे शुक्ल पक्ष में वृद्धि पाता है वैसे ही सोम वृद्धि पाये। इस मन्त्र द्वारा यह कामना की गई है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय॥

—ऋ० १-९१-४

पदच्छेद—या, ते, धामानि, दिवि, या पृथिव्याम्, या, पर्वतेषु, ओषधीषु अप्सु।
ते भिः, नः, विश्वे, सुमनाः, अहेळन्, राजन्, सोम, प्रति हव्या, गृभाय।

अन्वयार्थ—या ते दिवि पृथिव्याम् पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु धामानि। राजन् सोम तेभिः विश्वेः सुमनाः अहेळन न हव्या प्रति गृभाय।

जो तेरे द्युलोक से प्रथिवी में, पर्वतों, वनस्पतियों और जलों में स्थान है, हे सोम राज ! उन सबके द्वारा अच्छे मन वाला (उपादान के रूप में प्रयुक्त होने वाला) हमारी हवि को ग्रहण करो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह कि सोम आपः राजा की भाँति अर्थात् परिमण्डल रूपी रथ पर सवार होकर आते हैं और वनस्पतियों में समा जाते हैं। वहाँ वे अपना स्थान परमात्मा की अनादि अग्नि के सहाय से भेषज पदार्थों में बना लेते हैं। खाने वाले पदार्थों में लिये जाकर शरीर का अंग बन जाते हैं। वहाँ मनुष्य इनको आत्मसात् कर इनसे सुख तथा बल प्राप्त करता है। ये शरीर का सौन्दर्य भी निर्माण करते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १-९१-५

पदच्छेद—त्वम्, सोम, असि, सत्पतिः, त्वम्, राजा, उत, वृत्रहा, त्वम्, भद्रः, असि, क्रतुः।

अन्वयार्थ—सोम त्वम् सत्पतिः असि उत त्वं राजा वृत्रहा। त्वं क्रतुः भद्र, असि।

हे सोम ! तुम सत् (कार्य-जगत) के स्वामी हो (निर्माता हो) और तुम वृत्रों की हत्या में कारण हो। तुम नेक कर्म करने वाले हो !

सत् का अर्थ हमने यहाँ पर कार्य-जगत् किया है। यहाँ पर सत् के अर्थ अविनाशी नहीं है। यहाँ पर इसका अर्थ व्यक्त है। व्यक्त जगत ही है। निर्मित जगत में व्यकता सोम के कारण ही होती है। इस कारण इसे कार्य जगत् का स्वामी अर्थात् निर्माता कहा है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ऋ० १-९१-६

पदच्छेद—त्वम्, च, सोम, नः, वशः, जीवातुम्, न, मरामहे।
प्रियः, स्तोत्रः, वनस्पतिः।

अन्वयार्थ—च सोम न वशः जीवातुं मरामहे। प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः।

और हे सोम ! हमारे में प्रवेश करो, जीवों को दीर्घ जीवी बनाओ। वनस्पतियों से प्रिय स्तुति योग्य हो।

प्राणियों के दीर्घ जीवन में सोम सहाय होता है।

इसी सूक्त का एक मन्त्र इस प्रकार है—

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्व१ न्तरिक्षं त्वं ज्योतिष वि तमो ववर्थ ॥
ऋ० १-९१-२२

पदच्छेद—त्वम्, इमाः, ओषधीः, सोम, विश्वाः, त्वम्, अपः अजनयः त्वम्, गाः। त्वम्, आ, ततन्थ, उरु, अन्तरिक्षम्, त्वम्, ज्योतिषा, वि, तमः ववर्थ।

अन्वयार्थ—सोम त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः अजनयः । त्वं अपः त्वं गाः ।

हे सोम तुम इन सब ओषधियों को उत्पन्न करने वाले हो । तुम अपः हो तुम उनकी रश्मियाँ हो ।

इस मन्त्र में ओषधि का अर्थ वनस्पतियों से है ।

इसका अगला मन्त्र इस प्रकार है—

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥

ऋ० १-९१-२३

पदच्छेद—देवेन, नः, मनसा, देव, सोम, रायः, भागम्, सहसावन्, अभि, युध्य । मा, त्वा, आ, तनत्, ईशिषे, वीर्यस्य, उभयेभ्यः, प्र, चिकित्स, गोइष्टो ।

अन्वयार्थ—सोम देव सहसावन् देवेन मनसा रायो माँग नः अभि युध्य । त्वा मा आ तनत उभयेभ्यः वीर्यस्त इशिषे गविष्टो प्र चिकित्स ।

हे बलवान सोमदेव ! दिव्य मन से ऐश्वर्य का भाग हमको देने की प्रेरणा दो । हमको प्राप्त कराओं ।

तुमको कोई न फैलावे (बिखेरे) । तुम (दोनों के) वीर्य का शासन करते हो । संघर्ष (विपत्ति अथवा बीमारी) में विशेष सहायता करते हो ।

गविष्ट का अर्थ युद्ध किया जाता है, परन्तु इस सूक्त के विषय के सन्दर्भ में बीमारी ही ठीक अर्थ होगा । चिकित्सा का अर्थ ठीक करने में सहायक होना है ।

इस मन्त्र में एक स्थान पर आया है कि तुम दो के वीर्य का शासन करते हो । दो से अभिप्राय है मित्र और वरुण आपः । यह बताया जा चुका है कि ये दोनों आपः आवेशयुक्त होने के कारण बलयुक्त होते हैं । यहाँ कहा है कि सोम इन दोनों के बल से शासन करता है । अर्थात् इन दोनों के बल से यह अपना कार्य करता है ।

अष्टम अध्याय

अब हम यह कह सकते हैं कि हमने असन्दिग्ध रूपेण सप्रमाण यह सिद्ध कर दिया है कि सोम आपः है, जिन पर किसी प्रकार का आवेश (इलेक्ट्रिक चार्ज) शेष नहीं होता। ये परिमण्डल में अत्यन्त गम्भीर स्थान पर स्थित होते हैं। हमने वेद प्रमाण से यह भी सिद्ध किया है कि परमात्मा की अनादि शक्ति अग्नि से इनका संयोग होने पर जगत् रचना प्रक्रिया में ये अत्यन्त आवश्यक कार्य सम्पन्न करते हैं।

वेद प्रमाण से यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि तीनों प्रकार के आपः अन्तरिक्ष में बनते हैं। वहाँ से वे पृथिवी पर आते हैं और पृथिवी के विभिन्न पदार्थों के बनाने में सहयोग देते हैं।

आपः के निर्माण के विषय में ऋ० १-१६३-३,४ में बताया जा चुका है कि जब परमाणुओं की साम्यावस्था भंग होती है तो इन्द्र बहिर्मुख हो परमाणुओं में आकर्षण-विकर्षण करने लगते हैं। इसका परिणाम परमाणुओं के निबन्धन बन जाते हैं। इन निबन्धनों में ही सोम एक प्रकार के आवेश-रहित आपः है।

यहाँ इस अध्याय में हम सोम और इन्द्र का जगत की रचना में संयुक्त कार्य का उल्लेख करने के लिये वेद के कुछ मन्त्रों का उल्लेख कर रहे हैं। इससे भी सोम के विषय में कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त होगा।

इस विषय में ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के अठाइसवें सूक्त के कुछ मन्त्र दे रहे हैं। इस सूक्त का देवता अर्थात् विषय है 'इन्द्र सोमौ'। इसका अभिप्राय है इन्द्र और सोम का सम्मिलित कार्य।

सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः।
अहन्नहिमरिणात् सप्तसिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि॥
—ऋ० ४-२८-१॥

पदच्छेद—त्वा युज तव तत् सोम सख्ये इन्द्र अपः मनवे स-स्रुतः कः।
अहन् अहिम अरिणात् सप्त सिन्धून् अप अवृणोत् अपिहिताइव खानि॥

अन्वयार्थ—(सोम तव तत् सख्ये त्वा युजा इन्द्रः सस्रुतः अपः मनवे कः। अहिम् अहन् अपिहितेव खानि सप्त सिन्धून अरिणात्।)

हे सोम! तेरी मित्रता में तुमसे संयुक्त हो, इन्द्र ने अपाहों को मनुष्यों के लिये

बहा दिया। अहि को तोड़ दिया, मानो बन्द हुओं को खोल दिया। और बहती हुई धाराओं को प्रेरणा देते हो।

वेद का कथन है कि इन्द्र ने सोम के साथ प्रथम मित्रता का जो कार्य किया वह था वरुणों के घेरे में फंसे हुए सोमों के घेरे को तोड़कर मुक्त करा धाराओं को बहा देना।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो।
अधि ष्णुना बृहता वर्त्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ।।
—ऋ० ४-२८-२।।

पदच्छेद—त्वा, युजः, नि, खिदत्, सूर्यस्य, इन्द्रः चक्रम्, सहसा, सद्यः इन्दो। अधि, स्नुना, बृहता, वर्तमानम् महः द्रुहः, अप, विश्व, आयु, धायि।

अन्वयार्थ—(इन्दो इन्द्रः सद्यः त्वा युजा सूर्यस्य चक्रं सहसा निखिदत्। अधि स्नुना बृहता वर्तमानम् महः द्रुहः विश्वायु अप धायि।)

हे सोम ! तुम्हारे सहयोगी इन्द्र ने तुरन्त सूर्य के चक्र को बल से तोड़ दिया। ऊपर बहुत बड़ा स्थित है, महान् द्रोह करने वाले, सब ओर जाने वाले का अपहरण कर लिया।

यहाँ पर 'ऊपर बड़े' से अभिप्राय अन्तरिक्ष से है। जब सोम के लिये इन्द्र ने सूर्य के चक्र को बल से फोड़ दिया तो उस समय तो सूर्य के ऊपर अन्तरिक्ष में इन्द्र वृत्रों के घेरे को तोड़कर सोमों को धाराओं में बहा रहा था।

सूक्त का तीसरा मन्त्र इस प्रकार है—

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून् मध्यन्दिनानभीके।
दुर्गे दुरोणे क्त्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत ।।
—ऋ० ४-२८-३।।

पदच्छेन—अहन्, इन्द्र, अदहत्, अग्निः, इन्दो, पुरा, दस्यून्, मध्यंदिनाता, अभीके।

दुर्गः, दुरोणे, क्त्वा, न, याताम्, पुरू, सहस्रा, शर्वा, नि, बर्हीत्।

अन्वयार्थ—(इन्द्रो अभी के दस्यून इन्द्रः अहन् अग्निः अदहत् मध्य दिनात् पुरा यातां पुरु सहसा नि शर्वा बर्हीत् दुरोणे दुर्ग क्त्वा न।)

हे सोम ! संघर्ष में दुष्टों को (यहाँ पर अभिप्राय वरुण आपः से है) इन्द्र तोड़ फोड़ देता है। अग्नि उनको जला देती है। ये दिन के मध्य (दिन से अभिप्राय है कल्प का) से पहले ही हो जाता है। बहुत सहस्रों जाते हुओं का वध कर दिया (दुर्गम सुरक्षित स्थानों में मानो बन्दी कर दिया।)

इन्द्र वृत्रों की कुण्डलियों को तोड़कर सोमों को स्वतन्त्र कर वृत्रों को दूर सुरक्षित स्थानों पर रोक देता है। जिससे वे पुनः सोमों को आकर घेर न लें। इस प्रकार सोमों को स्वतन्त्र कर जगत के निर्माण-कार्य में लगा देता है।

इसका अगला मन्त्र है—

विश्वस्मात् सीमधमां इन्द्र दस्यून् विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥
—ऋ० ४-२८-४॥

पदच्छेद—विश्वस्मात्, सीम्, अधमान्, इन्द्र, दस्यून, विशः, दासीः अकृणोः, अप्रशस्ताः ।

अबाधेथाम् अमृणतम्, नि, शत्रून, अविन्देथाम्, अप-चितिम् वधत्रैः ।

अन्वयार्थ—(इन्द्र सीम दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः दासीः विशः अप्र शस्ताः । शत्रून अबाधेथाम् नि अमृणतं वधत्रे अपचितं अविन्देथाम्.।)

इन्द्र तुम इन अधीन विरोधियों को सब प्रकार से अधीन करो। विरोधियों को पीड़ित करो, सर्वथा नष्ट करो।

वरुण आपः जो विपरीत आवेश वाले हैं को परास्त करके सोमों को इन्द्र द्वारा मुक्त करने की बात इस मन्त्र में कही गई। सोमों को वरुणों से मुक्त कराने के विषय में अनेक मन्त्रों में वर्णन आया है। यह क्रिया अनेक स्थानों पर होती है। यही कारण है कि इसका एकाधिक बार वर्णन आया है।

सोम जगत् के पदार्थों का मुख्य भाग बनाते हैं। यदि ये वरुणों से घिरे रहें तो वे पदार्थ निर्माण में कार्य नहीं कर सकते। इस कारण जगत् के पदार्थ बनने से पहले इनका वरुणों के घेरे से बाहर आना अत्यावश्यक था।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततदाना ॥
—ऋ० ४-२८-५॥

पदच्छेद—एव, सत्यम्, मघवाना, युवम्, तत्, इन्द्रः, च, सोम, ऊर्वम् अश्व्यम्, गोः ।

आ अदर्दृतम्, अपिहितानि, अश्ना, रिरिचथुः, क्षाः, चित्, ततृदाना।

अन्वयार्थ—(एवा सोम इन्द्रश्च मघवाना युवं ऊर्वं अश्व्यं गोः आ अदर्दृतम् सत्यम्। अपिहितानिः चित् अश्ना रिरिचथुः।)

इस प्रकार हे सोम और इन्द्र! धनवान् तुम दोनों महान् कर्मशील किरणों के समूहों को स्थित और विदीर्ण करो। (अश्व परमात्मा की शक्ति जब कार्य करती है ता इस नाम से जानी जाती है।) बन्द किये हुए भूमियों को खो जाने वाले से खाली कर दिया। इस प्रकार जो कुछ तुम दोनों ने किया यह हो पाया।

सोम और इन्द्र ने मिलकर क्या किया इस सूक्त में उसकी एक झलक मात्र है। सोम को वरुणों के घेरे से निकाल कर रचना-कार्य में लगा दिया।

यह बताया जा चुका है कि सोम परिमण्डलों का बहुत अधिक द्रव्यमानवाला अंश होता है। इस कारण सब ठोस और भारी पदार्थों का यह मुख्य अंश होता है।

नवम अध्याय

वेद में सोम का उल्लेख बहुवचन में भी हुआ है। यह द्रष्टव्य है कि इस रूप में उसका अर्थ क्या होता है। देवता वाचक होने पर तो सोम आपः के रूप में ही आता है। यह तो हमने स्पष्ट कर ही दिया है। देवता का अर्थ है मन्त्र अथवा मन्त्रों का विषय। यह हम देख चुके हैं कि इस रूप में तो सोम आवेशरहित आपः के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

किन्तु जब सोम मन्त्र का विषय न हो और किसी दूसरे देवता अर्थात् मंत्रों के विषय में इसका प्रयोग किया गया हो और बहुवचन में हो तब इसका क्या अर्थ बनता है? इसके लिये कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

ऋग्वेद १-२-१ का एक उदाहरण तो हम प्रथम अध्याय में दे ही चुके हैं। वहाँ मन्त्र का देवता वायु है। उस मन्त्र के मध्य में सोम शब्द का बहुवचनान्त प्रयोग किया गया है। तब हमने बताया था कि वहाँ पर भी सोम का अर्थ आपः ही है।

इसी प्रकार एक मन्त्र है—

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ॥

— ऋ० ५-३०-११

पदच्छेद—यत्, ईम्, सोमाः, बभ्रुधूताः, अमन्दन् वृषभः अरोरवीत् सादनेषु।

अन्वयार्थ—(यत् बभ्रुधूताः सोमाः ईम्, अमन्दन् वृषभः सादनेषू अरोरवीत्।)

जब ये बभ्रुधूता (विभूषित) सोमो ने प्रसन्न कर दिया (सुन्दरता से स्थिर हो गये) तो कामना पूर्ण करने वाले इन्द्र ने अपने स्थान पर शोर मचाया। अर्थात् प्रसन्नता अनुभव की।

इन्द्र सोम को जगत् के पदार्थों में स्थिर करना चाहता है। जब यह सुन्दरता से स्थित हो जाता है तो इन्द्र भी प्रसन्नता प्रकट करता है।

इस मन्त्र में सोम को बभ्रुधूता कहा है। बभ्रु का अर्थ है भूरे रंग का। ऐसा सोम को किस आधार पर कहा है यह विचारणीय है। हम समझते हैं कि जब आवेश युक्तों को उज्ज्वल और चमकता हुआ कहा गया है तो इन आवेशरहितों को भूरा कहा जाना असंगत नहीं हो सकता। कदाचित् इसके भूरे कहे जाने से इसे सोम पत्रों का स्वरस मान लिया गया हो सकता है। परन्तु सोमों का यहाँ उल्लेख बहुवचन में होने से यह कोई एक पदार्थ प्रतीत नहीं होता। हमारे विचार से सोम आपः तो बहुत संख्या में ही हैं।

एक अन्य उदाहरण निम्न प्रकार है—

इमे वाँ सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत
वायो शुक्रा अयंसत। —ऋ० १-१३५-६

पदच्छेद—इमे, वाम्, सोमाः, अप्सु, आ, सुताः, इह, अध्वर्युभिः, भरमाणाः, अयंसत, वायो, शुक्राः, अयंसत।

अन्वयार्थ—(वायो वां इमे सोमा अप्सु। इह सुता अध्वर्युभिः भरमाणाः।)

हे वायु! तुम दोनों (वायु और इन्द्र) सोम अपाहों में, इन निर्मित पदार्थों में अध्वर्यु द्वारा (परमात्मा द्वारा) पुष्टि पाते हो।

इस मन्त्र में सोमों को आपः ही कहा है।

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—

इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्राः गवाशिरः ॥
—ऋ०१-१३७-१

अन्वयार्थ—(मित्रावरुणा वाम् इमे सोमाः गवाशिरः शुक्राः गवाशिरः।)

हे मित्र और वरुण! तुम दोनों बलवान रश्मियों से मिश्रित सोमों को हमारे समीप लाओ।

एक अन्य मन्त्र का उदाहरण प्रस्तुत है—

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुयेभिर्वृषपर्वा विहायाः ॥
—ऋ० ३-३६-२

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है।

पदच्छेद—इन्द्राय, सोमाः, प्रदिव, विदानाः, ऋभु, येभिः, वृषपर्वा, विहायाः।

अन्वयार्थ—(इन्द्राय सोमाः प्रदिवः विदानाः येभिः ऋभुः वृषपर्वा विहायाः)।

इन्द्र के लिए सोम प्राचीन जाने जाते हुए बुद्धिमान बलयुक्त त्याग करने वाले को अधीन कर लेते हैं।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सोम (अग्नि के संयोग से प्रकाशित अर्थात् सजीव होते हुए) इन्द्र के लिए कार्य करने लगते हैं। और बलवानों को भी विजय कर लेते हैं।

इसका यह भी अभिप्राय हो सकता है कि सोम मनुष्य शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है और इन्द्र का कार्य जो इन्द्रियों में होता है उसकी सहायता कर बलवानों को भी विजय करने में सफ़ल होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सुदृढ़ शरीर वाला जो सोम आपः के बहुत मात्रा में होने से होता है बल का लक्षण है और इन्द्र की शरीर में सहायता करता है।

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते।
क्षयं चन्द्रास इदवः ॥ —ऋ० ३-४०-४

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है।

पदच्छेद—इन्द्र, सोमाः, सुताः, इमे, तव, प्र यन्ति, सत्पते, क्षयम्, चन्द्रासः, इन्दवः।

अन्वयार्थ—(सत्पते इन्द्र इमे सोमाः सुताः तव चन्द्रासः इन्दवः क्षयं प्रयन्ति।)

हे जगत के स्वामी इन्द्र! ये उत्पन्न हुए सोम प्रसन्न करने वाले प्रकाशमान ग्रह को (मनुष्य शरीर को) भली प्रकार जाते हैं।

अर्थात् ये सोम आपः शरीर बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं।

एक अन्य मन्त्र है—

आ वां वहिष्ठाः इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम्॥
—ऋ० ४-१४-४

इस मन्त्र का देवता अग्निर्लिङ्गोक्ता है—

पदच्छेद—आ, वाम् वहिष्ठा, इह, ते, वहन्तु, रथाः अश्वासः, उषसः वि-उष्टौ।

इमे, हि वाम्, मधु-पेयाय सोमाः, अस्मिन्, यज्ञे, वृषणा, मादयेथाम्।

अन्वयार्थ—(इह ते वहिष्ठा ते रथाः अश्वासः व्युष्टौ आवहन्तु। हि वृषणाः इमे सोमाः वा मधुपेयाय अस्मिन् यज्ञे मादयेथाम्।)

इस यज्ञ (सृष्टि-रचना कार्य) में तेरे बहुत वहन करने वाले अश्व उषाकाल में ले जाते हैं। निश्चय से कामनाओं को बढ़ाने वाले ये सोम तुमको मिठास पान कराने के लिए इस यज्ञ में आनन्द प्राप्त करें।

इस मन्त्र के अनुसार सोम मिठास पान करने वाले हैं, पान कराने वाले नहीं।

इन सब मन्त्रों में इन्द्र, वरुण, मित्र इत्यादि के संयुक्त कार्य का ही वर्णन है। यह निश्चित ही है कि सोम बहु वचन में भी आपः के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

दशम अध्याय

पवमानः सोम ।

पवमानः सोम के विषय में वेदों में बहुत कुछ लिखा गया है। पवमाना का अर्थ है पवित्र करने वाला अथवा पवित्र हुआ हुआ। हमारे विचार में ऋग्वेद के नवे मण्डल में 'पवमाना सोम' का अर्थ पवित्र होता ही है।

पवित्र करने वाला अथवा होना का अर्थ हम ऊपर बता चुके हैं। निर्माणाधीन पदार्थों में पवित्र के अर्थ हैं उपकारी पदार्थ। उस अवस्था में पवित्र हुए का अर्थ होगा वह पदार्थ जो उपकारी बनाया जा चुका है। अतः ऋग्वेद के नवे मण्डल में उस सोम का वर्णन है जो पवित्र करने वाले हैं।

अपने मन्तव्य के समर्थन में हम यहाँ पर ऋग्वेद के नवे मण्डल के कुछ मन्त्रों को उद्धृत कर रहे हैं। इस छोटी सी पुस्तक में विस्तार से कुछ वर्णन कर पाना तो सम्भव नहीं है तदपि हमारा मत है कि सोम परिमण्डल में वे परिमण्डलीय कण हैं जो परिमण्डल के मध्य में वरुणों से घिरे होते हैं। वे परिमण्डल में परिमण्डल का मुख्य भार तथा द्रव्य-मान बनाते हैं। ये कण आवेशरहित (चार्जलैस) होते हैं। आवेशरहित होने का यह अर्थ नहीं कि वे बेकार हैं। उनका अपना प्रयोग है। वे मनुष्य के लिए क्या करते हैं वह सब इस ऋग्वेद के नवे मण्डल में वर्णन किया गया है। उसमें से कुछ का ही हम यहां उल्लेख कर सकते हैं।

इस सूक्त का पहला मन्त्र उद्धृत है। इसका देवता पवमानः सोम है।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ —ऋ० ९-१-१

पदच्छेद— स्वादिष्ठया, मदिष्ठया, पवस्व, सोम, धारया।
इन्द्राय, पातवे, सुतः।

अन्वयार्थ—(सोम इन्द्राय पातवे सुतः स्वादिष्ठया धारया पवस्व।)

हे सोम ! इन्द्र के ग्रहण करने के लिए उत्पन्न हुए हुए (पदार्थों) को स्वादिष्ट और मीठी धारा से पिये जाओ।

सुतः का अभिप्राय है जगत् रचना में निर्मित पदार्थ। इस मन्त्र में कहा गया है कि जगत् के पदार्थों को सोम स्वादिष्ट और मीठा अर्थात् रुचिकर बनायें।

इन्द्र वह शक्ति है जो जगत् निर्माण कार्य में संलग्न है। यहाँ पर यह कामना की गई है कि सोम धाराओं में आए और जगत् के पदार्थों को हितकर और रुचिकर

बनाये। क्योंकि पवित्र हुआ सोम अर्थात् परिमण्डल का मध्य भाग ऐसा करने का सामर्थ्य रखता है।

इसी सूक्त का एक अन्य मन्त्र है।

इसका देवता भी पवमाना सोम है—

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या।
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ — ऋ० ९-२-१

पदच्छेद पवस्व, देववीः, अति, पवित्रम्, सोम, रंह्या।
इन्द्रम्, इन्दो, वृषा, आ, विश।

अन्वयार्थ (सोम देववीः। रंह्या पवित्रं अति पवस्व। इन्दो वृषा इन्द्र आ विश।)

देव कामना वाले सोम! शीघ्रता से पवित्र करने वाले साधन को भली भाँति पवित्र करो। हे सिंचन करने वाले सोम! इन्द्र को चारों ओर से प्रवेश करो।

यहाँ पर सोम से यह कार्य करने की कामना की गई है कि वह पवित्र करने के साधनों को पवित्र करे और फिर यह भी कहा गया है कि वह इन्द्र में प्रविष्ट होकर रचना-कार्य में सहायक बने।

सायणाचार्य तथा अन्य मध्यकालीन भाष्यकार यह मानते हैं कि पवित्र एक प्रकार का वस्त्र है जिससे सोम रस छाना जाता है। हम इसका अर्थ करते हैं कि वह साधन जिससे सोम आपः अन्य प्रकार के आपः से पृथक् किये जायें। वह साधन पवित्र है।

पवित्र उस साधन को कहते है जिससे पदार्थ मिलावट से पृथक् किये जा सके। हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि सोम का अर्थ सोम आपः (न्यूट्रोन्स) है। इस कारण यहाँ पर हमारा अर्थ ही उपयुक्त है।

'अग्निषोमाः' के सूक्त में हम यह बता चुके हैं कि परमात्मा की शक्ति से अग्नि में सोमों को अन्य प्रकार के आपः से पृथक् करने का सामर्थ्य है।

इस मन्त्र में कहा गया है, 'देव कामना वाले सोम।' इसका अर्थ है कि दिव्य कार्य करने वाले सोम। इस मन्त्र से ऐसा प्रकट होता है कि सोम ही अग्नि को पवित्र करने की सामर्थ्य देता है।

एक अन्य मन्त्र है—

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ —ऋ० ९-३-१

पदच्छेद—एष, देवः, अमर्त्यः, पर्णवीः, इव, दीयति।
अभि, द्रोणानि, आ-सदम् ॥

अन्वयार्थ—(एषः देवः पर्णवीः इव दीयति। अमर्त्यः द्रोणानि अपि आ-सदम।)

यह देव (सोम) पंखों पर उड़ते हुओं की भाँति जाता है। यह अमर द्रोणों में आकर बैठ जाता है।

अमर द्रोणों से अभिप्राय है परिमण्डल। परिमण्डल (ऐटम) परिमण्डलीय कण (ऐटोमिक पार्टिकल्स) और मरुतों से अनुपात में अधिक स्थायी होते हैं। इनके विषय में वैशेषिक दर्शन में कहा है।

अनित्ये नित्यम्। नित्यम् परिमण्डलम्॥

—वै० द० ७-७८, २०

अर्थात् अनित्यों से नित्य बनते हैं।

इसका अभिप्राय है कि अनित्य आपः (ऐटोमिक पार्टिकल्स) से नित्य परिमण्डल (ऐटम) बनते हैं। और परिमण्डल नित्य हैं।

यही आधुनिक विज्ञान में भी स्वीकार किया जाता है कि ऐटम ऐटोमिक पार्टिकल और मरु(मोलिक्यूल) से अधिक स्थायी होते हैं।

इन स्थायी परिमण्डलों को द्रोण कहा गया है। इनको अमर्त्य कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि सोम अन्तरिक्ष से उड़ते हुए आते हैं और परिमण्डलों अर्थात् ऐटम में आकर बैठ जाते हैं। परिमण्डल को ही अमर द्रोण कहा है।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है:

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति।
पवमानो अदाभ्यः॥ —ऋ० ९-३-२

पदच्छेद—एष, देवः, विपा, कृतः, अति, ह्वरांसि, धावति।
पवमानः, अदाभ्यः।

अन्वयार्थ—(एषः देवः विपा अतिकृतः पवमानः अदाभ्यः ह्वरांसि धावति।)

यह देव (सोम) बहुत बारीक किया हुआ पवित्र हुआ अबाध शत्रु की ओर दौड़ता है।

ऊपर के मन्त्र में कहा गया है कि यह सोम उड़ते हुए परिमण्डलों में आ जाते हैं। और इस मन्त्र में कहा है कि ये सोम अपने विरोधी, अभिप्राय यह कि वरुणों की ओर दौड़ते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि परिमण्डल के भीतर आ जाते हैं। वहाँ पर वरुणों के भीतर जाकर छिप जाते हैं।

इस मन्त्र में एक शब्द है। 'विपा', निघण्टु में यह अंगुलिनामों में आया है। इन्हीं अंगुलिनामों में एक शब्द है 'अण्व्यः। इसका अर्थ है अणु की भाँति बारीक किया हुआं। यही अर्थ हमने विप्रों के किये हैं।

एक अन्य मन्त्र है—

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यस्कृधि ।।

—ऋ० ९-४-१

पदच्छेद—सना, च, सोम, जेषि, च, पवमान, महि, श्रवः ।
अथा, नो, वस्यस्कृधि ।

अन्वयार्थ—(महि श्रवः पवमान सोम जेषि च । अथ न वस्यसः कृधि ।)

महान् पवित्र हुआ सोम है और विजय प्राप्त करता है । और हमारे बसाने का (श्रेष्ठ कार्य) करे ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सोम अन्न का महान् भण्डार है । यह बल और वीर्य देने वाला है । इससे हम मनुष्य फलते-फूलते हैं ।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यस्कृधि ।। —ऋ० ९-४-२

पदच्छेद—सन, ज्योतिः, सन स्वः, विश्वा, च, सोम, सौभगा ।
अय, नः, वस्यः, कृधि ।

अन्वयार्थ—(सोम ज्योतिः सन स्वः विश्वा सौभगा । अथ न वस्यसः कृधि ।) सोम ! तुम ज्योति शक्ति का भण्डार हो । सोम ! तुम कल्याण करने वाले हो । तुम सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाले हो । और बसे हुओं का कल्याण करो ।

इसी मण्डल के अगले सूक्त का आरम्भ इस प्रकार है—

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो विराजति ।
प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ।। —ऋ० ९-५-१

पदच्छेद—सन् इद्ध, विश्वतः, पतिः, पवमानः, विराजति ।
प्रीणन्, वृषा, कनिक्रदत् ।

अन्वयार्थ—(समिद्धः विश्व तस्पतिः वृषः पवमानः कनिक्रदत् । प्रीणन् वि रा जति ।)

प्रकाशमान सब ओर से (स्वामी का भाँति) कामनाओं की वर्षा करने वाला (अपने व्यवहार से) कहता हुआ (प्रेरणा देता हुआ) विराजता है ।

रुचिकर तथा आकर्षक होने से सोम देखने और चखने वालों की कामनाओं की धारा प्रवाह वाणी में (प्रेरणा देता हुआ) यहाँ विराजता है ।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है।

तनूनपात्पवमानः शृंगे शिशानो अर्षति ।
अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ —ऋ० ९-५-२

पदच्छेद—तनू-नपात्, पवमानः, शृंगे, शिशानः, अर्षति।
अन्तरिक्षेण, रारजत्।

अन्वयार्थ—तनूनपात पवमानः शृंगे शिशानः अर्षति। अन्तरिक्षेण रारजत्।

शरीर में गिरा हुआ (शरीरधारी) पवित्र होता हुआ, ऊँचे स्थान पर तेज किया जाता हुआ अन्तरिक्ष से चमकता हुआ आता है।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सोम पवित्र होने पर अर्थात् उपकारी स्वरूप धारण किये हुए अन्तरिक्ष से गिरता है और शरीर अर्थात् ऐटम में स्थान पा जाता है।

अब हम मण्डल के अन्तिम सूक्त का उल्लेख कर अपना वक्तव्य समाप्त करना चाहते हैं। सूक्त का देवता वही है जो इस पूर्ण मण्डल का देवता है। अर्थात् यह सूक्त भी 'पवमाना सोम' (पवित्र होते हुए सोम) के विषय में ही है।

इसका प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥
—ऋ० ९-११४-१

पदच्छेद—यः इन्दोः, पवमानस्य, अनु, धामानि, अक्रमीत्।
तम्, आहुः, सुप्रजा, इति, यः, ते, सोम, अविधत्, मनः, इन्द्राय, यन्दो, परि, स्रव।

अन्वयार्थ—(पवमानस्य इन्दोः धामानि यः अनु अक्रमीत्। सोम ते सुप्रजा यः ते मनः अविधत् आहुः इन्दो इन्द्राय परि स्रव।)

पवित्र हुए सोम के धामों के समीप जो आता है। हे सोम ! तेरी श्रेष्ठ प्रजा तेरे मन को धारण करती है। कहते हैं कि सोम इन्द्र के लिए प्राप्त होता है।

'परिस्रव' का अर्थ है बहता है। अभिप्राय है प्राप्त होता है।

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि सोम इन्द्र की सहायता के लिए उन लोगों की सहायता करता है अर्थात् धारण करता है जो उसके ध्यान के धाम को जाते हैं। अर्थात् सोम का सेवन करते हैं। इन्द्र का कार्य है रचना करना। यह सोम इस कार्य में उसकी सहायता करता है, जो इसके समीप आते हैं। अभिप्राय यह कि इसका प्रयोग करते हैं। उनकी श्रेष्ठ प्रजा प्राप्त होती है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥

—ऋ० ९-११४-२

पदच्छेद—ऋषे, मन्त्रकृताम्, स्तोमैः, कश्यप, उत्, वर्धयत्, गिरः ।
सोमम्, नमस्य, राजानम्, यः, जज्ञे, वीरुधाम्, पतिः इन्द्राय, इन्दो, परि, स्रव ।

अन्वयार्थ—(ऋषे कश्यप मन्त्रकृताम् स्तोमैः गिरः उद्वर्धयन्, राजानं, सोमं नमस्य । यः विरुधां पतिः जज्ञे इन्द्राय इन्दो परि स्रव ।)

हे ऋषि कश्यप । मन्त्रों को कहने वाले की स्तुतियों (वाणियों) को विख्यात करो । राजा सोमों को नमस्कार करो । जो इस रचना यज्ञ में वनस्पतियों का स्वामी है । हे सोम ! इन्द्र के लिए प्राप्त होवो ।

ऋषि कश्यप को आदि-प्रजापति माना गया है । यह मान्यता है कि समस्त मानव प्राणी ऋषि कश्यप की ही सन्तान है । इस मन्त्र का ऋषि कहता है कि हे कश्यप ! इस सोम को नमस्कार करो । उसका कारण यह है कि उसने ही बनस्पतियों के द्वारा तुम में सन्तान उत्पन्न करने का सामर्थ्य उत्पन्न किया है । यह कामना की गई है कि सोम सृष्टि रचना यज्ञ करने वाले इन्द्र को प्राप्त होवे ।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतारः ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्ततेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।:

ऋ० ९-११४-३

पदच्छेद—सप्त दिशः नाना, सूर्याः, सप्त, होतारः, ऋत्विजः ।
देवाः, आदित्याः, ये, सप्त, तेभिः, सोम, अभि, रक्ष, न, इन्द्राय, इन्दो, परि, स्रव ।

अन्वयार्थ—(सप्त दिशः नाना सूर्याः होतारः सप्त ऋत्विजः । आदित्याः सप्त देवा सोम तेभिः नः अभि रक्ष । इन्द्राय इन्दो परिस्रव ।)

सातों दिशायें और बहुत से सूर्य होता ऋत्विज हैं । आदित्य के सात पुत्र सोम द्वारा हमारी रक्षा करें । हे सोम ! इन्द्र के लिए प्राप्त होओ ।

इस मन्त्र में सात दिशाओं और नाना सूर्यों का उल्लेख आया है । इन शब्दों पर भाष्यकारों ने कल्पना के घोड़े दौड़ाये हैं । दिशा तो आठ मानी गई हैं, किन्तु इनमें सात का ही उल्लेख क्यों है ? एक दिशा कहाँ गई ? सायण का कथन है एक जिधर सोम है उसको छोड़ दिया गया है । परन्तु सोम तो सब ओर है ।

हम समझते हैं कि हमारे सूर्य मण्डल के बाहर छः सूर्य और हैं। हमारे सूर्य सहित सात सूर्य हैं। सात दिशाओं से उन सातों सूर्यों का अभिप्राय है। वे सूर्य भी हमारी पृथिवी पर सोमों की वर्षा करें।

अदिति के सात पुत्र कहे गये हैं। अदिति-प्रकृति। इसके सात पुत्र हैं मित्र और वरुण तथा इन्द्र के प्रभाव से उत्पन्न पंच तन्मात्रा।

यह आकांक्षा की गई है कि सब ओर से सोम इन्द्र की सहायता के लिए प्राप्त हों।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः।
अराती वा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥
ऋ० ९-११४-४

पदच्छेद -यत्, ते, राजन्, शृतम्, हविः, तेन, सोम, अभि, रक्ष, नः। अराति-वा, मा, नः, तारीत्, मो, च, नः, किम्, च न, आममत्, इन्द्राय, इन्दो, परि, स्रव ॥

अन्वयार्थ —(राजन् सोम ते शृतं यत् हवि तेन नः अभि रक्ष। अरातीवा नः मा तारीत् नः च न मा आममत्। इन्द्राय इन्दो परि स्रव।)

राजा की भाँति सम्पन्न सोम तुम्हारी परिपक्व हवि है। उससे हमारी रक्षा करो। उल्लंघन करने योग्य (विरोधी) हमें कष्ट न दें। हमारे किसी भी काम को नष्ट न करें। हे सोम! इन्द्र के कार्य के लिए प्राप्त होओ।

वेद को समझने वाले जानते हैं कि इन्द्र का कार्य सृष्टि की रचना करना है।

अपनी इस पुस्तक को समाप्त करते हुए हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि इस नवें मण्डल के मन्त्र और विशेष रूप से इसके अन्तिम सूक्तों का उल्लेख करने के दो प्रयोजन हैं।

एक तो यह कि हम यह बताना चाहते हैं कि पवित्र हुआ सोम जो कुछ करता है, सोम को आपः स्वीकार करने से ही उसके अर्थ ठीक बैठते हैं।

हमारा दूसरा प्रयोजन यह स्पष्ट करना है कि आर्यसमाज के एक विद्वान् पण्डित ने भी ऋग्वेद के नवें और दसवें मण्डल का भाष्य किया है। उन्होंने नवें मण्डल में 'पवमाना सोम' के अर्थ परमात्मा की शक्ति जो पदार्थों को पवित्र करती है, किया है।

इस सूक्त के विचार से अहुत सीमा तक सोम के अर्थ सफल हुए हैं। परन्तु इस अन्तिम सूक्त को पढ़ने से और हमारे पूर्व दिये सोम के अर्थों पर विचार करने पर, हम अपने अर्थों को ही ठीक मानते हैं।

सोम तीसरी प्रकार के आवेशरहित आपः हैं। हमारा मत है कि सोम ऋग्वेद में जब देवता के रूप में अथवा जब किसी अन्य देवता के प्रसंग में आया है

अथवा जब यह शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है उसका प्रयोग आप: के अर्थ में ही हुआ है।

सायणादि मध्यकालीन भाष्यकारों द्वारा प्रतिपादित सोम के अर्थों को हम सर्वथा अमान्य मामने हैं।

नौवें मण्डल में पवमाना के अर्थ हमने पवित्र हुआ लिया है। मन्त्रों के अर्थ से हमने भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि इस मण्डल में पवित्र होता हुआ सोम क्या उपकारी कार्य करता है।

सोम के साथ पवस्व शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। पवस्व के अर्थ पीने से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु जब इस शब्द के यौगिक अर्थ करेंगे तो पीने का अभिप्राय आत्मसात् करना ही ग्रहण करना होगा।

●

श्री गुरुदत्त की विवेचना प्रधान रचनाएं

दर्शन एवं विज्ञान

अद्वैत मीमांसा[1] (प्रेस में)
न्याय दर्शन (भाष्य)[1]
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य[1]-१
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य-२
ईश केन कठ उपनिषद् (भाष्य
माण्डूक्य--मुण्डक उपनिषद्
प्रश्न-ऐतरेय उपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म
विश्वे देवा[1]
विज्ञान और विज्ञान[1]
वेद प्रवेशिका[1]
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता (अध्ययन)
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता भाष्य
सायंस और वेद
सांख्य दर्शन
वेदों में सोम

इतिहास

इतिहास में भारतीय परम्पराएं[1]

राजनीति

बुद्धि बनाम बहुमत[1]
भारत : गांधी नेहरू की छाया में
राष्ट्र राज्य और संविधान
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान—हिन्दू राष्ट्र
हिन्दुत्व की यात्रा

संस्मरण

भाग्य-चक्र
भाव और भावना (संस्मरण)
मैं हिन्दू हूं ,,

उपन्यास

अन्तरिक्ष में
अन्धकार[1]
अन्धे की लाठी
अग्नि परीक्षा[1]
अनदेखे बन्धन
अन्धेर नगरी
अपने पराये[1]
अमानत[1]
अमृत मंथन[1]
अवतरण

उपन्यास

असमंजस[1]
आकाश पाताल
आवरण
आशा-निराशा[1]
आह्वान
इबलीस[1]
ईमानदार
उलझती राहें[1]
उलझन
उल्टी बही गंगा

उन्मुक्त प्रेम[1]
उमड़ती घटाएं
ऊंचे मकान[1]
एक और अनेक
एक मुंह दो हाथ (दो हाथ)
कला[1]
कामना[1]
काल चक्र[1]
काहे होत उदास
कुंकुम[1]
कुमार संभव
कौमुदी[1]
खण्डहर बोल रहे हैं[1] ३ भाग
खेल और खिलौने[1]
गगन के पार
गंगा की धारा[1]
गिरते महल[1]
गुण्ठन
गोरखधंधा
गृह संसद
घर की बात[1]
चंचरीक
चितेरे
चौराहा[1]
छलना
छोटी सी बात[1] (लाड़-प्यार)
जनम-जनम तुम
जमाना बदल गया (६ भाग)
जग इक सपना[1]
जनप्रवाह (दो भाग)
जयदमन
ज़िदगी
जात न पूछ कोय (परिग्रह)
झरोखे
डाल डाल के पंछी[1]
ढकोसला (संस्कार)
डूबती नौका[1]
तब और अब[1]
तबेला[1]
दस साल बाद
दासता के नये रूप
दायरे
दिग्विजय
दीन दुनिया
दो भद्र पुरुष
दो लहरों की टक्कर[1] २ खण्ड
देश की हत्या
द्रष्टा[1]
धरती और धन
धूप छांह
नगर परिमोहन
नई दृष्टि
नवरंग
नदी तीरे
नारी नटेश्वर
नास्तिक
नये विचार नयी बातें
निर्मल
निर्लेप
निष्णात[1] (जंजाल)
न्यायाधिकरण[1]
पड़ोसी[1]
पतन का मार्ग
पथिक[1]
पंकज[1]
परदे के पीछे[1]
परम्परा
परिभव[1]

जीवन ज्वार
पाणिग्रहण
परित्याग
परिवर्तन
पत्रलता
पाप ग्रौर पुण्य[1]
पिंजरे का पंछी
पुष्यमित्र
पूर्वग्रह
प्रगति के पथ पर (मंज़िल)
प्रगतिशील
प्रतिशोध
प्रवृत्ति
प्रवंचना[1]
प्रभात वेला[1]
प्रारब्ध ग्रौर पुरुषार्थ
प्रेरणा
प्रेयसी
फैलती छाया
बहती रेता[1]
बनवासी
बाहर ग्रौर भीतर
बसन्त राग
बीती बात
भग्नाश[1]
भाग्य रेखा
भैरवी चक्र
भगवान भरोसे
भाग्य का सम्बल
भावुकता का मूल्य
भूल
मधु[1]
मनीषा
ममता

परिमल[1]
महानगर[1]
मानव[1]
मायाजाल
मेघवाहन
मैं न मानूं
मौजमेला
मृगतृष्णा
यह क्यों है (पुकार)
यह सब झूठ है (झूठ है)
यह संसार[1]
यात्रा का ग्रन्त
युद्ध ग्रौर शांति (भाग-१)
युद्ध ग्रौर शांति (भाग-२)
रानी साहिबा[1]
रीति रिवाज
लकीर के फकीर
लालसा
लुढ़कते पत्थर
लोक परलोक
वसन्त राग
वसुन्धरा
वाम मार्ग[1]
विकार[1]
विक्रमादित्य साहसांक
विकृत छाया
विडम्बना
विधुर[1]
विवेक
विद्यादान[1]
विश्वास
विनाशाय च दुष्कृताम्
विलोम गति[1]
विश्वासघात

महाकाल[1]

विक्रमादित्य साहसांक

सच या झूठ

सदा वत्सले मातृ-भूमे ![1]

सफर

सफलता के चरण

सब एक रंग

सभ्यता की ओर

सम्पदा

सम्बन्ध[1]

सम्भवामि युगे-युगे

सहज सगाई

सीमाबद्ध

सर्वमंगला (मंगला)

सहस्रबाहु

साधना

सागर और सरोवर

सागर तरंग

साहित्यकार

सुख की खोज

सुमति

संगम

संस्कार[1] (ढकोसला)

संस्खलन[1]

वीर पूजा

शादी

स्नेह का मूल्य

स्वराज्यदान

स्वार्थी

स्वाधीनता के पथ पर[1]

षड्यन्त्र

हम और तुम

क्षितिज

नाटक

वन्दे मातरम्

मेरी पसन्द

कहानी-संग्रह

बिखरे चित्र

किशोरोपयोगी साहित्य

जगत् की रचना

द्वितीय विश्वयुद्ध[1]

महर्षि दयानन्द

युगपुरुष राम[1]

विविध

अन्तिम यात्रा

उपन्यासकार गुरुदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : मनमोहन सहगल

श्री गुरुदत्त अभिनन्दन ग्रन्थ सं० अशोक कौशिक

[1]इस संकेत वाली पुस्तकें सजिल्द पुस्तकालय संस्करण में उपलब्ध हैं; जिन पुस्तकों के सामने मूल्य नहीं लिखा, उनके संस्करण समाप्त हैं तथा किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं हैं। कोषों में दिए नाम का अभिप्राय यह है कि यही पुस्तक इस नाम से भी छप चुकी है।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनॉट सरकस (मद्रास होटल के नीचे), नयी दिल्ली-११०००१
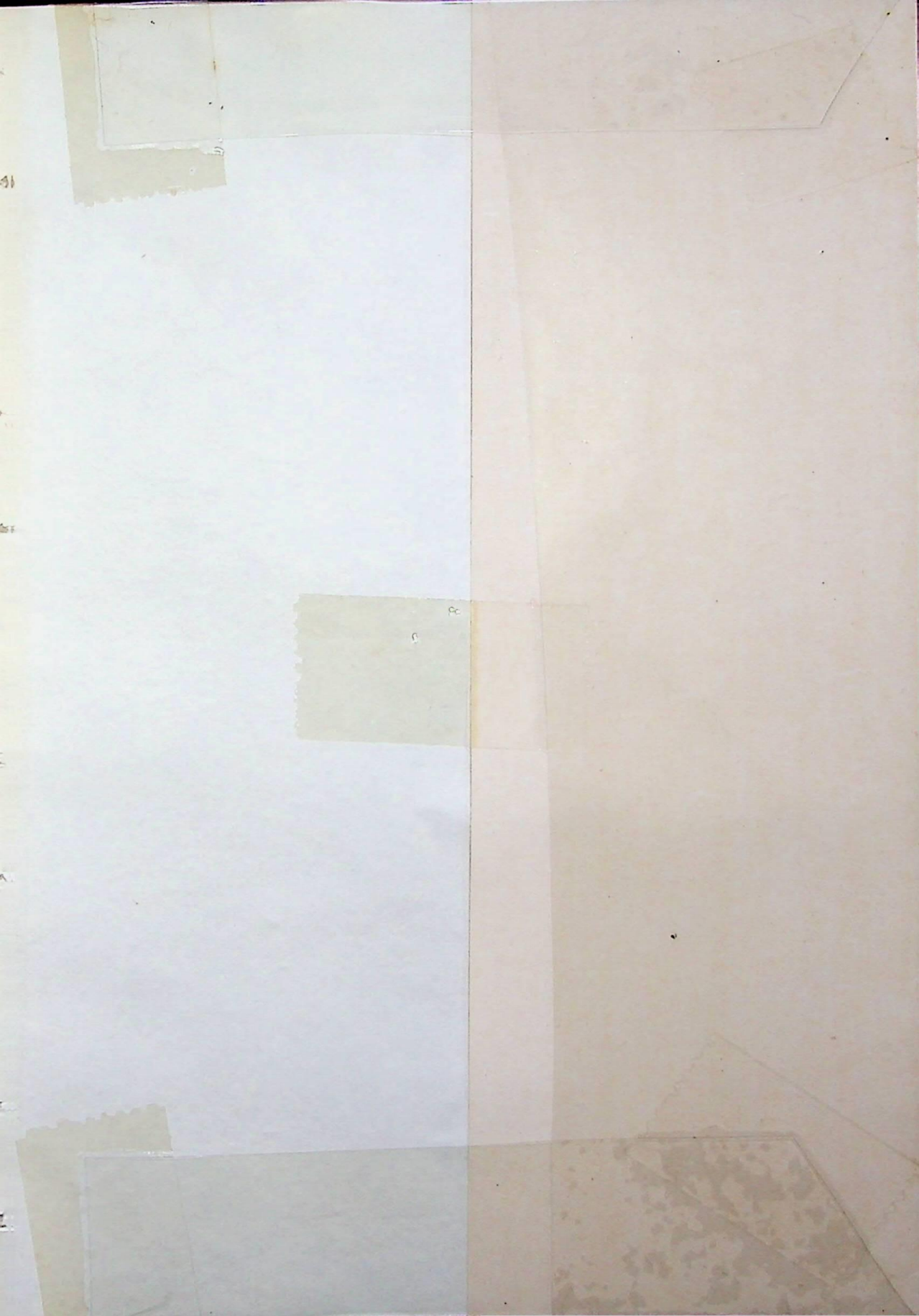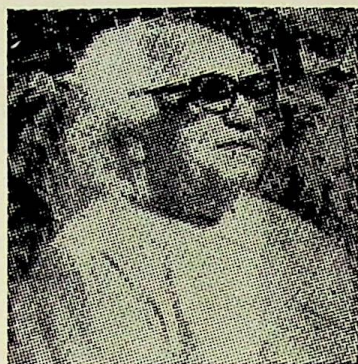
श्री गुरुदत्त

1894-1989 शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता